आधुनिक राजस्थानी साहित्य

— एक शताब्दी —

भूमिका

आचार्य नरोत्तमदास स्वामी

लेखक

शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश'

प्रकाशक

चित्रगुप्त प्रकाशन, अजमेर

प्रकाशक—ओ० पी० माथुर
चित्रगुप्त प्रकाशन, पुरानी मण्डी, अजमेर

मूल्य—पाँच रुपया

मुद्रक—बसन्तीलाल ओझा,
रमा प्रिंटिंग प्रेस अजमेर

प्राक्कथन

राजस्थानी भाषा का साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह प्राचीन है, विशाल है, विषय-वैविध्य से परिपूर्ण है और जीवनोपयोगी है। उसकी इस अन्तिम विशेषता ने कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महामना पं० मदनमोहन मालवीय जैसे महापुरुषों का ध्यान भी आकर्षित किया था।

इस महान् राजस्थानी साहित्य का परिचय कराने का कोई उल्लेखनीय प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ उसके विकास का कोई इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया।

श्री शान्तिलाल भारद्वाज ने अपनी इस कृति में राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल का एक सरसरा परिचय देने का प्रयास किया है जो सब प्रकार से अभिनन्दनीय है।

राजस्थानी भाषा का प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य बहुत विशाल और विस्तृत है। उसकी तुलना में उसका आधुनिक साहित्य परिमाण में बहुत अल्प है। आधुनिक काल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ बाहरी राजकर्मचारियों का पदार्पण राजस्थान में हुआ जिसके फलस्वरूप राजस्थानी को राज भाषा के पद से हटना पड़ा और उसका स्थान पहले अंग्रेजी और उर्दू ने और आगे चलकर किसी अंश में हिन्दी ने लिया। शिक्षा-संस्थाओं में अंग्रेजी और हिन्दी को स्थान मिला। राजस्थानी न तो राजभाषा रही और न शिक्षा की भाषा! नव-शिक्षित लोग धीरे-धीरे राजस्थानी से पराङ्मुख होते गये। उनकी धारणा में राजस्थानी अब गँवारू बोली मात्र रह गयी। फलतः राजस्थानी में नवीन साहित्य की रचना केवल प्राचीन शैली के कवियों सत्क-कवियों तथा कतिपय मातृ-भाषा के प्रेमी उत्साही साहित्यकारों तक ही सीमित रह गयी।

इस प्रकार यद्यपि राजस्थानी में साहित्य रचना का प्रवाह मन्द पड़ गया पर वह बिलकुल बन्द कभी नहीं हुआ। आधुनिक काल में भी राजस्थानी भाषा में ऐसा महत्त्वपूर्ण साहित्य लिखा गया जो राजस्थान की तथा राजस्थान के बाहर की जनता को भी, प्रभावित करने में समर्थ रहा है।

आधुनिक काल में पद्य-साहित्य की प्रधानता रही पर गद्य-साहित्य भी अच्छी मात्रा में लिखा गया। नाटक कहानी एकांकी गद्य-काव्य रेखा चित्र, संस्मरण, आदि गद्य के विविध अंगों का विकास हुआ। उपन्यास जीवनी

और निबन्ध की प्रगति प्रायः ही मन्द रही। वैज्ञानिक और व्यावसायिक साहित्य का तो हिन्दी जैसी सक्षम भाषाओं में भी अभाव-सा है फिर राजस्थानी में तो उसकी आशा ही कैसे की जाय?

श्री भारद्वाज को राजस्थानी के आधुनिक-कालीन साहित्य का यह परिचय प्रस्तुत करने में पर्याप्त कठिनता का सामना करना पड़ा है। नवीन राजस्थानी साहित्य का निर्माण तो निरन्तर होता रहा है पर उसका प्रचार वैसा नहीं हो पाया। यह बात नहीं कि उसकी माँग नहीं पर राजस्थान में अच्छी प्रकाशन संस्थाओं के अभाव में उसका यथेष्ट विज्ञापन नहीं हो पाता और जिन्हें उसकी चाह है उनके पास वह नहीं पहुँच पाता। उसका बहुत-सा भाग एक बार प्रकाशित होकर दुबारा प्रकाशित नहीं हुआ। वह आज Out of print और अब अलभ्य हो चुका है।

प्रकाशित साहित्य को आज एक स्थान पर प्राप्त कर सकना भी सम्भव नहीं। कोई ऐसा पुस्तकालय नहीं जहाँ आज वह साहित्य एकत्र देखने को मिल सके। कोई ऐसा पुस्तक-विक्रेता नहीं जिसको यहाँ मूल्य देकर भी उसे एक साथ प्राप्त किया जा सके। इस समस्त साहित्य का संग्रह करके उसका अध्ययन करना और उसका परिचय लिखना सहज-साध्य काम नहीं। श्री भारद्वाज ने अपने अध्यवसाय से इस दुस्साध्य कार्य को सिद्ध करने का प्रयास किया है।

यह परिचय एम० ए० परीक्षा के प्रबन्ध के रूप में लिखा गया था। सीमता के कारण लेखक प्राप्त सामग्री की भी विस्तृत छान-बीन नहीं कर पाया। इस दृष्टि से यह परिचय किसी अंश में अधूरा भी कहा जा सकता है।

पुस्तक के मुद्रण में कई भूलें हो गयी हैं। आशा है दूसरे संस्करण के समय परिचय अधिक पूर्ण किया जा सकेगा और मुद्रण सम्बन्धी भूलों को भी ठीक किया जा सकेगा।

उपासना-भवन
उदयपुर
विजयादशमी सं० २०१८

नरोत्तमदास स्वामी

साहित्य-धारा में परिवर्तन के किसी भी क्षण को पकड़ पाना आसान नहीं है। फिर भी मान्यताओं के निर्धारण में हमारे पूर्वाग्रहों का भी कम योग दान नहीं रहता। हम निष्कर्ष के प्रति सर्वदा पूरा उत्तरदायित्व नहीं निभा पाते और यही फिसलन साहित्य को कई बार कुछ भ्रमक परिभाषाओं में भी बाँध देती है।

राजस्थान अपनी संस्कृति और व्यवस्था में सदा से कई विचित्रताओं को लेकर चला है। राजस्थानी-साहित्य के प्रशंसक और निन्दक—दोनों अतियों पर हैं। प्रशंसक उसकी किसी भी दुर्बलता को स्वीकार नहीं करना चाहता और निन्दक को सिवाय दुर्बलताओं के और कुछ भी नजर नहीं आता।

वस्तुतः यह हमारे आत्मालोचन का अभाव है। साहित्य को इसीलिए समालोचक के हाथों प्रतिष्ठा अर्जित करनी होती है।

राजस्थानी साहित्य की जड़ें गहरी हैं। हिन्दी के वीर-गाथा काल को डिंगल कविता के ही आधार पर लिखना पड़ा है। आश्चर्य है कि मध्य-काल में डिंगल-काव्य हिन्दी की बोलियों की पंचायत में नहीं बैठ पाया। तब वह लोक-काव्य के रूप में जीवित रहा।

प्राचीन और मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य पर पर्याप्त न होते हुए भी काफी लिखा गया है। आज भी लिखा जा रहा है। लेकिन आधुनिक काल की प्रवृत्तियों पर फुटकर लेखों के अतिरिक्त और कुछ काम नहीं हो पाया। कुछ हुआ भी हो तो लेखक इस अज्ञान को अपना अपराध ही मानता।

अतः यह आवश्यक समझा गया कि आधुनिक काल की राजस्थानी साहित्य की विविध प्रवृत्तियों की एक इतिवृत्तात्मक जानकारी प्रस्तुत की जाए।

प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक काल के जन्मदाता महाकवि सूर्यमल्ल को माना गया है। इससे पूर्व भी कविराजा बाँकीदास की उपेक्षा नहीं की जा सकती लेकिन सन् '५७ की क्रान्ति जातीय-उत्थान का एक स्वर्णिम पृष्ठ है जहाँ स्वाभिमान का उद्घोष अधिक प्राणवान सुनाई देता है और राजस्थानी साहित्याकाश में महाकवि सूर्यमल्ल सर्वाधिक प्रज्वलित हैं।

पुस्तक के लिए जितनी सामग्री जुटाई गई—उतना लिखा नहीं जा सका। जिन परिस्थितियों में लिखा गया उसमें सम्भव नहीं हो सकता था। सम्भव है कि अब इस दिशा में कुछ करूं।

श्रद्धेय आचार्य नरोत्तमदास स्वामी का किन शब्दों में आभार मानूं? इस काम में वे पूरे निर्देशक रहे। उनका स्नेह भरी प्रेरणा बना। उनका आशीर्वाद प्राप्त किये बिना शायद मुझे कुछ भी करने का साहस नहीं होता।

राजस्थानी के उपासक और साधक श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने मुझे कई उपलब्धियों से परिचित किया।

राजस्थान साहित्य अकादमी के सचिव पद पर कार्य करते हुए अकादमी कार्यालय से भी मुझे यथोचित मदद मिली। ऐसी मदद जो मात्र अकादमी से ही मिल सकती थी। और सब से अन्तिम आभार पत्नी का—जिसने पुस्तक के बिखरे हुए पन्नों को कभी रद्दी के कागजों में नहीं मिलने दिया।

दीपमालिका }
१९६१ }

शान्तिलाल भारद्वाज 'राकेश'

मरु-सरस्वती के पुजारियों को

समर्पित

'राकेश'

आधुनिक राजस्थानी साहित्य

—राजस्थानी भाषा

राजस्थानी भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार की भाषा और राजस्थान तथा मालवा की मातृ-भाषा है।

ई० स० १९११ की जन-गणना के अनुसार, करीब १ करोड़ ४० लाख मनुष्यों की बोलियाँ 'राजस्थानी' में गिनी जाती हैं। ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है—

१ पश्चिमी राजस्थानी —जोधपुर की खड़ी राजस्थानी अर्थात् शुद्ध पश्चिमी मारवाड़ी ढटकी थली, बीकानेरी बागड़ी शेखावाटी मेवाड़ी, खैराड़ी सिरोही की बोलियाँ गोड़वाड़ी और देवड़ावाटी।

२ उत्तर-पूर्वी राजस्थानी —अहीरवाटी और मेवाती।

३ मध्य-पूर्व राजस्थानी (ढूंढाड़ी)—तोरावाटी खड़ी जयपुरी काठेड़ा राजावाटी, अजमेरी किशनगढ़ी चौरासी नागरचाल हाड़ौती।

४ दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी या मालवी —इसके कई उपभेद हैं जिनमें रांगड़ी और सोंडवाड़ी प्रमुख हैं।

५. दक्षिण राजस्थानी —निमाड़ी।

'भीली' को ग्रियर्सन ने 'राजस्थानी' से पृथक माना है लेकिन डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या व्याकरण की दृष्टि से 'भीली' को 'राजस्थानी' के अत्यधिक समीप मानते हैं। राजस्थानी भाषा ने दक्षिण में कन्नड़ी भाषा तक को प्रभावित किया है। इसके अलावा पंजाब उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश कश्मीर की गूजरी बोली और तमिलनाडु की सौराष्ट्री बोली भी राजस्थानी के अन्तर्गत हैं।

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने निम्न चार बोलियों को ही मुख्य माना है—

१ पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी—उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, और शेखावाटी के क्षेत्र।

२ पूर्वी राजस्थानी या ढूंढाड़ी —जयपुर और हाड़ौती क्षेत्र।

३ उत्तरी राजस्थानी —अलवर प्रदेश की मेवाती और अहीरी बोलियां।

४ दक्षिणी राजस्थानी या मालवी—मालवा और नीमाड़ की बोलियां।

राजस्थानी का प्राचीन नाम मरु-भाषा था। आठवीं शताब्दी के 'कुवलयमाला' नामक ग्रन्थ में भारत की १८ देश-भाषाओं में मरुदेश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है। अबुलफ़ज़ल ने 'आईने अकबरी' में भारत की प्रमुख भाषाओं में मारवाड़ी को भी गिनाया है। राजस्थानी का चारणों द्वारा प्रयुक्त रूप 'डिंगल' नाम से प्रसिद्ध रहा है।

विस्तार और साहित्य दोनों की दृष्टि से मारवाड़ी राजस्थानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। मारवाड़ी सदा से राजस्थानी की साहित्यिक भाषा रही है और डिंगल का मूलाधार भी मारवाड़ी ही है।

ऐतिहासिक विकास—

आधुनिक भाषाओं का आविर्भाव सामान्यतः १०० ई० के आस-पास माना जाता है जिसकी सम्यक जानकारी हमें उपलब्ध नहीं। ५०० ई० तक के लेखों में बौद्ध और जैन धार्मिक साहित्यों में एव नाटक आदि में प्राचीन प्राकृत मिलती है।

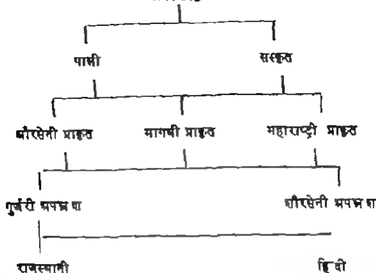
प्राकृत के बाद अपभ्रंश का समय आया जिसमें लिखा गया काफी साहित्य इन दिनों खोज निकाला गया है। प्राकृत से अपभ्रंश कैसे विकसित हुई और इसी प्रकार अपभ्रंश से आधुनिक भाषाएं किस प्रकार विकसित हुई इस सम्बन्ध में अभी पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ पाया है।

अपभ्रंश के कई भेदों उपभेदों का पता चलता है। प्राकृत चन्द्रिका में अपभ्रंश के २७ भेद गिनाये गये हैं। विक्रम की छठी से ग्यारहवीं शताब्दी तक देश में अपभ्रंशों का प्रचार रहा। तत्पश्चात् आधुनिक आर्य-भाषाओं ने उनका स्थान-ग्रहण कर लिया। ठीक उसी प्रकार जैसे प्राकृत का स्थान अपभ्रंश भाषाओं ने लिया था।

राजस्थानी भाषा का सम्बन्ध गुर्जरी अपभ्रंश से माना गया है। इसी गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई जिसका एक रूप आगे चलकर 'डिंगल' नाम से विख्यात हुआ।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थानी का वंश-वृक्ष निम्न प्रकार से दिया है

आर्य-भाषाएँ



यह बताना कठिन है कि राजस्थानी का उद्भव किस समय हुआ ? अनुमान किया जाता है कि ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अपभ्रंश से पृथक होकर इसने स्वतन्त्र भाषा के रूप में विकसित होना प्रारम्भ किया होगा ।

राजस्थानी के विशेष लक्षण या गुण—

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी भाषा के जो विशेष लक्षण गिनाये हैं, उनमें से कुछ की संक्षिप्त जानकारी निम्न प्रकार से है

(क) उच्चारण सम्बन्धी

१ 'अ' का उच्चारण 'इ'
जैसे मनुष्य का मिनख सरदार का सिरदार ।

२ इसके विपरीत—इ-कार व उ-कार के स्थान पर अ-कार का उच्चारण। जैसे दिन का दन सिख का सख ।

३ मूर्धन्य 'ण' और 'ळ' राजस्थानी की दो विशिष्ट ध्वनियाँ हैं
मूर्धन्य 'ड-ढ' ध्वनियों की ओर राजस्थानी का विशेष आकर्षण है ।

४ कुछ बोलियों में च, छ, ज झ, तालव्य ध्वनियों का उच्चारण दन्त्य सुनाई देता है । साथ ही 'स' की ध्वनि 'ह' हो जाती है ।

साधारण राजस्थानी और डिंगल में लगभग वैसा ही अंतर है जैसा साधारण ब्रजभाषा और पिंगल में है।

चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' और महाकवि सूर्यमल का 'वंशभास्कर' भाषा की दृष्टि से अपने पृथक अस्तित्व रखते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में राजस्थानी की अपेक्षा ब्रजभाषा की विशेषताएँ अधिक हैं लेकिन वंशभास्कर राजस्थानी (डिंगल) के अधिक समीप है।

डॉ॰ टैसीटोरी ने डिंगल के दो रूप माने-

१ प्राचीन डिंगल—	१३ वीं शताब्दी के समय से १७वीं शताब्दी के मध्य तक
२ अर्वाचीन डिंगल	१७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आज तक की डिंगल

उन्होंने उपरोक्त दोनों वर्गों की डिंगल में कुछ भेद भी गिनाये हैं।

पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाड़ी के साहित्यिक रूप को 'डिंगल' नाम दिया गया है। चारण भाट, राव मोतीसर, ढाढी आदि जातियाँ डिंगल रचना से विशेष सम्बन्धित रही हैं।

स्पष्ट किया जा चुका है कि 'डिंगल' बोलचाल की राजस्थानी से पृथक् एक साहित्यिक भाषा रही है। यह राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा न होकर 'राजस्थानी' की ही एक काव्यगत शैली विशेष है। साधारण राजस्थानी और डिंगल में मुख्य अंतर या तो शब्दावली का है या शब्दों की वर्तनी का व्याकरण का अन्तर सर्वथा नगण्य है।

भाषा का विकास—

राजस्थानी भाषा के विकास को दो कालों में बांटा गया है—

१ प्राचीन राजस्थानी काल-सं॰ १६०० से पूर्व

२ नवीन राजस्थानी काल सं॰ १६० के पश्चात्

प्राचीन राजस्थानी काल में गुजराती व राजस्थानी एक ही भाषा थी। सोलहवीं शताब्दी से वे पृथक रूप से विकसित होने लगीं।

नवीन राजस्थानी को प्राचीन से पृथक करने वाली कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं—

१ 'ड' और औ स्वरों का विकास

२ वर्तनी या हिज्जे में अइ' अउ' के स्थान पर 'ऐ' और औ का प्रभाव

३ मान्यतर जाति (नपुंसक लिंग) का उठ जाना।
४ शब्दों के अंत में 'इ' 'उ' और 'ए' के उच्चारण का लोप।

इस परिच्छेद की सहायक पुस्तकें निम्न हैं—

१	राजस्थानी साहित्य (एक परिचय)	—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी
२	राजस्थानी भाषा और साहित्य	—डा० मोतीलाल मेनारिया
३	राजस्थानी भाषा	—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
४	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

पृष्ठभूमि (१)

—राजस्थानी-साहित्य-परम्परा

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि १० वीं शताब्दी के अन्दर गुजराती और राजस्थानी का सम्मिलित रूप किसी भी मात्रा में कोई रचना हुई भी हो तो उसका प्रामाणिक रूप हमें प्राप्त नहीं।[1]

हिन्दी भाषा के आदिकाल की ओर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि हिन्दी के वर्तमान स्वरूप के निर्माण से पूर्व कथा और दोहा-साहित्य का उत्तर-भारत की प्रायः सभी देशी भाषाओं में प्रचार था। उस समय की हिन्दी और राजस्थानी में इतना अन्तर नहीं हो पाया था जितना आजकल है। यदि यह कहा जाय कि वे एक ही थी तो अनुचित नहीं होगा।[2]

यह भी बताया जा चुका है कि राजस्थानी साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध एक ओर हिन्दी से है तो दूसरी ओर गुजराती से। कभी कभी एक ही रचना को एक विद्वान् 'पुरानी राजस्थानी' कहता है तो दूसरा 'जूनी गुजराती' कह देता है।

सन् ईस्वी की १० वीं से १४ वीं शताब्दी तक के काल को हिन्दी साहित्य का 'वीरगाथा-काल' या आदिकाल कहा जाता है। यह समय विशेष तथा ऐतिहासिक काव्यों का है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों पर 'चरित-काव्य' लिखने का प्रचलन ७ वीं शताब्दी से मिलता है।[3]

डॉ० मेनारिया के अनुसार आदिकाल का जितना अधिक साहित्य राजस्थानी में मिलता है उतना अन्य किसी प्रान्तीय भाषा में नहीं मिलता।

राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ में डा० मेनारिया जी 'आदिकाल' को 'वीरगाथा काल' नहीं मानते क्योंकि इस काल के साहित्य-सृजन में सर्वाधिक योगदान जैन मनीषियों का रहा है। यह दूसरी बात है कि परिस्थितियों-वश कई जैनेतर रचनाएं नष्ट भी हो गई हैं और जो थोड़ी बहुत बची रह गई हैं वे भी अभी पूर्णतः प्रकाश में नहीं आ पाई।

---

१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल—द्वितीय व्याख्यान।
२ ढोला मारू रा दोहा —संपादकीय।
३ हजारीप्रसाद द्विवेदी।

रासो ग्रन्थ, जिनके आधार पर आदिकाल को वीरगाथा-काल कहा गया है राजस्थान के किसी समय विशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति को भी सूचित नहीं करते। वे केवल चारणों और भाटों आदि की जन्म-जात मनोवृत्ति को ही प्रकट करते हैं।

अतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य को मात्र वीर-पूजा या वीर-प्रशस्ति का साहित्य मात्र कह देना उसकी अन्यान्य सिद्धियों की उपेक्षा करना होगा।

राजस्थानी साहित्य जनता का साहित्य है। सत्य है कि राजस्थानी साहित्य सरस्वती के एक हाथ में वीणा है तो दूसरे में तलवार, लेकिन जनता के जीवन के नानारंगी चित्र उसमें प्रचुर मात्रा में मिलेंगे।

जनता के सुख-दुख आशा-निराशा उमंग-आघात हास्य-रुदन सभी का उसमें मार्मिक अंकन हुआ है।[1]

फिर भी, वीरता राजस्थानी-साहित्य का सर्वाधिक विशिष्ट गुण है।

स्व० मदन मोहन मालवीय ने एक स्थान पर कहा है

'राजस्थानी वीरों की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर-साहित्य है। संसार के साहित्यों में उसका निराला स्थान है। वर्तमान-काल के भारतीय नवयुवकों के लिये तो उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिये।

मध्यकाल:—

मध्यकाल में आकर 'राजस्थानी' और 'गुजराती' दोनों भाषाओं ने अपने पृथक अस्तित्व बना लिये।

इस काल के कवियों के मुख्य विषय-शृंगार, भक्ति और कीर्ति-कथन रहे। 'ढोला मारू रा दोहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इस काल की राजस्थानी की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ हैं। दोनों ग्रन्थ डिंगल के हैं जो शृंगार रस की दृष्टि से अन्यतम हैं।

भक्ति के क्षेत्र में मीराबाई और ईसरदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

राज्याश्रित जातियों के कवि 'वीरपूजा' के साथ ही बन्धे रहे, जिनका कोई उच्च-कोटि का ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

सन्त दादू के अनुयायी कवियों ने भी राजस्थानी साहित्य को समृद्ध किया।

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के रचयिता पृथ्वीराज (सं० १६०६-सं० १६५७) डिंगल (राजस्थानी) के बड़े प्रसिद्ध कवि हैं। पृथ्वीराज रचित अन्य रचनाओं

---

१ राजस्थानी साहित्य एक परिचय—प्रो नरोत्तमदास स्वामी।

का उल्लेख भी मिलता है यथा—१ बलम भायमत रा दूहा २ मेगा महरी ३ मनरेरावउत ४ दसरथ रावउत।

सं० १७०० से १९०० तक के उत्तर-मध्यकाल में भी भाषा और साहित्य की दृष्टि से राजस्थानी साहित्य की गौरव वृद्धि हुई। डा० मेनारिया इस काल को राजस्थानी का स्वर्णकाल कहते हैं।

'मुहणोत नैणसी री ख्यात' के रचयिता नैणसी 'सूरजप्रकाश' के रचयिता करणीदान 'भाषा भारथ' के रचयिता नैन सी महाराजा मानसिंह कविराज बांकीदास बखीदास आदि इसी काल के साहित्यकार हैं।

जैन साहित्य—

राजस्थानी का जैन साहित्य भी अनेक रूपों में लिखा गया है।

जैसे—(क) प्रबन्ध कथा रास रासो भास चौपई।

(ख) फाग बारहमासा चौमासा।

(ग) दूहा गीत धवल गजल।

(घ) संवाद मातृका स्तवन सज्झाय।

(ङ) पट्टावली गुर्वावली बही दफ्तर, पत्र।

(च) बालावबोध आदि।

वज्रसेन सूरि शालिभद्र सूरि, विनयचन्द्र जिनपद्म सोमसुन्दर, कुशललाभ समयसुन्दर, जिनसमुद्र सूरि जिनहर्ष जसराज उदयराज आचार्य जयभिक्षु (तेरापंथी) आदि कई जैन आचार्यों ने राजस्थानी साहित्य को कई बहुमूल्य रचनाएँ दीं।[1]

लौकिक साहित्य के अन्तर्गत 'रुकमणी-मंगल' और 'नरसी जी रो माहेरो' रचनाएँ भी राजस्थान में काफी लोकप्रिय हुईं।

भक्त शिरोमणि मीराबाई के अतिरिक्त चन्द्रसखी और बख्तावरजी के पद राजस्थानी भक्ति साहित्य की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

गद्य–साहित्य

राजस्थानी और गुजराती गद्य की परम्परा हिन्दी से अधिक प्राचीन है।

'राजस्थानी का प्राचीन गद्य प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ऐसी प्रचुरता

---

१ राजस्थानी साहित्य—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी।

असमिया को छोड़कर भारत की अन्य किसी भी भाषा में नहीं मिलती। असमिया भारत की प्राच्यतम भाषा है तो राजस्थानी पाश्चात्यतम।[1]

श्री अगरचन्द नाहटा के अनुसार जैन भण्डारों की कई हस्तलिखित प्रतियों में १८ वीं शताब्दी तक के राजस्थानी गद्य के नमूने मिलते हैं।

अनुमानतः राजस्थानी गद्य का आरम्भ तेरहवीं शताब्दी से हुआ। चौदहवीं शताब्दी की जो गद्य रचनाएँ मिली हैं वे भाषा और शैली की दृष्टि से पुष्ट हैं और यह कहा जा सकता है कि यह गद्य प्रारम्भिक स्थिति का न होकर विकास की स्थिति का है।

राजस्थानी गद्य और पद्य दोनों के विकास में जैन विद्वानों का विशेष हाथ रहा है यद्यपि ये रचनाएँ साहित्यिक से पहले धार्मिक ही हैं।

राजस्थानी गद्य की कई जैनेतर रचनाएँ भी प्राप्त हुई हैं। पट्टों-परवानों और ताम्रपत्रों में भी राजस्थानी गद्य के सुन्दर नमूने मिलते हैं।

राजस्थानी का अधिकांश प्राचीन गद्य जैन लेखकों का लिखा हुआ है। संग्रामसिंह की 'बाल शिक्षा' और कुल-मंडन के 'मुग्धावबोध-औक्तिक' में राजस्थानी का प्राचीनतम गद्य मिलता है।

जैन साधुओं की एक सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने धर्मोपदेशों के लिये लोक भाषाओं को माध्यम बनाया। फलतः राजस्थानी में कई धर्मकथाएँ भी लिखी गईं।

तरुणप्रभ राजस्थानी के प्रथम प्रौढ़ गद्यकार माने गये हैं। सोमसुन्दर सूरि, मेरुसुन्दर पार्श्वनाथ माणिक्यचन्द्र सूरि जैसे विद्वानों ने भी राजस्थानी गद्य को अपनी प्रौढ़ कृतियाँ दी हैं।

राजस्थानी गद्य साहित्य में ऐतिहासिक गद्य की भी प्रचुरता है। राजस्थानी-रचनाओं में गद्य के कई रूप मिलते हैं, जैसे—

१ बात	२ ख्यात	३ वंशावली
४ पीढ़ियावली	५ पट्टावली	६ विगत
७ हकीकत	८ हाल	९ याद
१० वचनिका	११ दवावैत-आदि	

वचनिकाओं में निम्न दो अत्यधिक प्रसिद्ध हैं—

१ अचलदास खींची री वचनिका—(अचलदास)

---

१ राजस्थानी साहित्य—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी।

९ राठौड़ रतनसिंह 'महेशदासौत री वचनिका' (खड़िया जग्गा)

दवावैतों में 'भाट मानीदास नरसिंह'गत गौड़ री दवावैत' प्रसिद्ध है।

ख्यात लेखकों में मुहणोत नैणसी दयालदास और बांकीदास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

वार्ता और कहानी साहित्य भी राजस्थानी गद्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। धर्म नीति वीरता प्रेम राजा प्रजा देवता-भूतप्रेत चोर डाकू आदर्शवाद यथार्थवाद लोक कथाएँ-कलाकृतियाँ आदि सबमें पर आधारित सहस्रों वार्ताएँ मिलती हैं।

राजस्थानी-पद्य के ही समान राजस्थानी-गद्य की परम्परा भी बड़ी पुरातन और प्राणवान है।

नवजागरण-काल और महाकवि सूर्यमल्ल

भारतवर्ष के इतिहास में राजस्थान को वीरभूमि कहा गया है। वीरता और शौर्य की यह विरासत हमारी संस्कृति का अलंकार है लेकिन राजस्थान में रजवाड़ों के इतिहास की सामन्तवादी संस्कृति राजस्थान के जनजीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करती। यहाँ इस तथ्य से अवश्य इन्कार नहीं किया जा सकता कि सामन्ती संस्कृति ने भी राजस्थान के जनजीवन को काफी दूर तक प्रभावित किया है। विवाह के अवसर पर हर दूल्हे का तलवार बाँधना हाथी-घोड़ों और सशस्त्र सैनिकों के भित्ति चित्र, दरबारी संस्कृति के प्रभाव के सूचक हैं। लेकिन राजशाही के प्रतीक राज्याश्रित वर्ग का जीवन तत्कालीन सामान्य जनजीवन की कोटि में नहीं आता। सामान्य समाज और सामन्ती समाज के बीच प्रारम्भ से ही एक गहरी दरार रही जो क्रमशः और अधिक गहरी होती चली गई।

कारण स्पष्ट है कि वीरपूजा के आत्मवातीत अनयायका ने राजाओं और सामन्तों के ऐश्वर्य एवं शौर्य का वर्णन करते रहने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझी। सामान्य जनजीवन राजस्थानी काव्य का अवलम्ब नहीं बन पाया फलत एक ओर रणक्षेत्र में साका और जौहर की ज्वाला जलती रही तो दूसरी ओर सामन्ती विलास की धतरधारा के रूप में रावलों और डावड़ियों की संख्या बढ़ती गई। प्रतापी राजा की सेना म क्षात्रधर्म पर मर मिटने वाले सैनिकों के बलिदानों की गाथा तो अमर हो गई, लेकिन उस अनवरत संघर्ष की प्रतिक्रिया-स्वरूप राजस्थान में जो सामाजिक और धार्मिक अव्यवस्था फैली उसकी ओर बरसों तक राजस्थानी कविता का ध्यान आकर्षित

नहीं हुआ। राजपूत जाति का ऐश्वर्य उसके क्षात्रधर्म-शासन और प्रतिष्ठा के कारण इतना फैला इतना फैला कि चारण बारहठों रावों और अन्य वन्दीजनों ने कमाई के मद से पलकर भी अपने को राज्याश्रित समझ लिया। उन्हें राज दरबारों में आश्रय भी मिला लेकिन सत्ता और शासक के प्रति इन कवियों की आस्था इतनी बढ़ी कि राजपूत राजाओं को सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुओं के सूर्य की ही मान्यता प्राप्त होती रही। ईश्वरीय सत्ता के सिद्धान्त की यह स्वीकारोक्ति काफी दूर तक राजस्थानी कवियों में पाई जाती है जो आगे चलकर इतनी रूढ़ हो गई कि किसी अन्य मान्यता या अभिव्यक्ति को काव्य का सम्मान मिला ही नहीं।

भारतीय साहित्य के आधुनिक या नवजागरण-काल का आरम्भ पश्चिम के सम्पर्क के साथ होता है। राजस्थानी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं। अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति से साक्षात्कार के फलस्वरूप भारतीय जनजीवन की विभिन्न स्थितियों में जो परिवर्तन आये यहाँ उनका सिंहावलोकन अप्रासंगिक नहीं होगा।

राजनैतिक स्थिति —

राजनैतिक दृष्टि से यह समय गहरी उथल-पुथल का था। भारत का सम्पूर्ण राजनैतिक प्रभुत्व धीरे धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में चला गया, अतः विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के नाम पर सम्पूर्ण देश एक भावनात्मक इकाई में बंध गया। यद्यपि इस संगठन में क्रियाशील शक्ति काफी विलम्ब से आ पाई।

सन् १८५७ का आन्दोलन जितने वेग से उठा उतनी ही तीव्रता से कुचल भी दिया गया। तत्पश्चात् भारत का शासन सात समुद्रों पार की महारानी विक्टोरिया के सीधे प्रशासन का अंग हो गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से शासन-सूत्र छीनकर ब्रिटेन की महारानी ने जातिभेद उठा देने और धार्मिक क्षेत्र में सभी को समान स्वतन्त्रता देने की सुधारवादी घोषणाएँ कीं। देश में सुधारवादी भावना का वेग बढ़ा।

सांस्कृतिक सम्पर्क की दृष्टि से भी उस समय भारत और ब्रिटेन अत्यधिक निकट आने लगे थे इसलिये देश में राजनैतिक चेतना भी बढ़ने लगी। 'जॉन स्टुअर्ट मिल' जैसे पाश्चात्य विचारकों के सम्पर्क से राजनैतिक अधिकारों की भी मांग बढ़ी।

सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई लेकिन प्रारम्भ

देश

में नरम दल का प्रभुत्व रहा। फिर बंगाल के विभाजन (बंग भंग) के प्रश्न पर देश भर में चेतना की लहर-सी दौड़ गई। बंग-भंग को एक कलेजे के दो टुकड़े कर देना समझा गया जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय भावना को बल मिला। देशवासियों ने इस वास्तविकता को महसूस किया कि भारत एक अविभाज्य राष्ट्र है जिसके अस्तित्व की रक्षा हर मूल्य पर की जानी चाहिये। कांग्रेस में भी अब लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे व्यक्ति का पदार्पण हुआ।

सन् १९०५ में जापान ने रूस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र को पराजित किया तो भारतीय जीवन पुनः अपनी सामर्थ्य को परखने लगा और महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन को देश की जनता का भारी समर्थन मिला।

द्वितीय विश्वयुद्ध तक तो भारत का बच्चा बच्चा स्वतन्त्रता के स्वरूप और उसके महत्त्व से परिचित हो उठा। ब्रिटिश शासन भारतीय जनता की भावनाओं को कुचलता रहा और भावनाएं बढ़ती रही।

विदेशी बन्धन से भारतीय प्रभुसत्ता को मुक्त कर लेने का एक और साहस भरा प्रयत्न सन् १९४२ में हुआ जब देश के नवयुवक बसन्ती चोले की माग करने लगे। जब यह क्रांति दबाई गई तो श्री सुभाषचन्द्र बोस और उनकी 'आजाद हिन्द फौज' ने राष्ट्रीय चेतना की ज्योति को जलाये रखा।

अन्ततः ब्रिटिश संसद और मन्त्रि-मण्डल की समझ में यह बात बैठी कि अब इस चेतना को कुचल पाना असम्भव है, और १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत ने राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली।

लगभग सम्पूर्ण शताब्दी की राजनैतिक उथल-पुथल ने राजस्थानी के समकालीन लेखकों को नये दायित्वों से परिचित कराया। समकालीन रचनाओं में इसके उदाहरण भी मिलते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति—

हिन्दू समाज व्यवस्था जो गत कई शताब्दियों से मुस्लिम सभ्यता से लड़ रही थी अब अंग्रेजी सभ्यता की टक्कर में आई। तब हिन्दू-समाज-व्यवस्था अत्यधिक जटिल और अव्यवस्थित हो चुकी थी। जाति और सम्प्रदाय की विभिन्न इकाइयों में संगठन का कोई सूत्र ढूंढ पाना कठिन था। कई सामाजिक कुरीतियां और कुप्रथाएं धर्म की छत्रछाया में पनप रही थी।

पाश्चात्य संस्कृति से समन्वय की घड़ी में भारतीय मानस ने अपनी दुर्बलता को पहचाना और उसके प्रायश्चित में जुट गया।

बंगाल में राजा राममोहन राय और उत्तर-भारत में स्वामी दयानन्द ने परम्परा की संकीर्णताओं पर खुली चोट की। स्वामी दयानन्द ने वेदों और उपनिषदों का सच्चा ज्ञान दिया। राजस्थान के कई राजा भी स्वामी दयानन्द के प्रभाव में थे।

देश में सुधारवादी आन्दोलन बढ़े। विधवा विवाह स्त्री-शिक्षा और अछूतोद्धार की दिशा में प्रयत्न हुए। नागरिकों को सम्मान प्रतिष्ठा दिलाने के इन आन्दोलनों ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एक संगठन-सूत्र में बाँध दिया।

आर्थिक क्षेत्र में उन दिनों असन्तोष बढ़ता जा रहा था। भारत के सम्पूर्ण बाजारों में अंग्रेजी माल बिक रहा था और स्वदेशी कल-कारखानों को बंद कर दिया गया था। देश का औद्योगिक विकास बिलकुल रुक गया था और भारत की अधिकांश जनता कृषि पर अवलंबित रह गई थी।

अंग्रेजी शिक्षा ने भी हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति को प्रभावित किया और हमारे सामने विचारने की दृष्टि ही बदलती चली गई।

भारत की राज्य-भाषा अंग्रेजी बन गई। उर्दू को भी अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में विशेष प्रश्रय मिला और यहीं से हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का आन्दोलन चला।

इस प्रकार देश के साहित्य और विचार पद्धति पर पाश्चात्य चिन्तन विधि का विशेष प्रभाव पड़ा।

सांस्कृतिक जीवन—

ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि अंग्रेजी शासन में आते ही भारतीय संस्कृति पश्चिम के सम्पर्क में आने लगी लेकिन उस समन्वय की स्थिति किंचित् दुर्भाग्यपूर्ण भी रही। एक तो इसलिये कि सदियों की पराधीनता में अपना अस्तित्व बचाते-बचाते भारतीय संस्कृति शिथिल पड़ चुकी थी। दूसरे इसलिए भी कि भारतीय जीवन उस पाश्चात्य प्रभाव को उदारतापूर्वक ग्रहण कर पाने की स्थिति में नहीं था। कारण स्पष्ट है कि अंग्रेजों और भारतीयों में शासक और शासित का सम्बन्ध था। अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष की प्रतिक्रिया-स्वरूप भी भारतीय के प्रति गौरव और अभारतीय के प्रति निग्रह की भावना बढ़ी। फिर भी भारत की सांस्कृतिक चेतना में पाश्चात्य सांस्कृतिक चेतना के सम्पर्क से नया प्रकाश फैला और उसे अपने अस्तित्व एवं सामर्थ्य का भान हुआ। उसकी महत्वाकांक्षाएँ भी बढ़ीं।

धार्मिक स्थिति —

धार्मिक जगत में विशेष महत्वपूर्ण जैसी कोई क्रांति नहीं हुई, लेकिन धार्मिक मान्यताओं को नई रोशनी में परखने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा। आर्य-समाज के तर्क और विवेक ने अन्ध-विश्वासों का भण्डाफोड़ किया। बंगाल के ब्रह्म-समाज मद्रास की थियोसोफिकल सोसाइटी और भक्ति के क्षेत्र में राधास्वामी सम्प्रदाय ने धार्मिक मान्यताओं को नये परिवेश में सवारा।

पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आने से ईश्वरीय सत्ता के बड़े बड़े सिद्धान्त अमान्य करार दे दिये गये। भाग्यवाद के अकर्मण्य मायावाद ने सक्रियता का स्वरूप धारण किया। नई चेतना और नया उल्लास दृष्टिगोचर हुआ।

आंग्ल-प्रभाव —

औद्योगिक क्रान्तियों से समृद्ध पाश्चात्य संस्कृति जीवन और साहित्य के सम्पर्क में आने से भारतीय मानस में यथार्थवादी भौतिक जीवन-दृष्टि का विकास हुआ। आचार-विचार सामाजिक-भावनाओं और शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ भाषा और साहित्य पर यह प्रभाव अत्यधिक पड़ा।

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य की सबसे बड़ी सिद्धि यह है कि इस काल में गद्य साहित्य का सूत्रपात और विकास हुआ। सृजन की यह नई विधाएँ भी अंग्रेजी साहित्य-शैली से सीधी प्रभावित हैं। हिन्दी-साहित्य में यह प्रभाव पहले बंगला भाषा के माध्यम से आया तत्पश्चात् आंग्ल-साहित्य उसके सीधे सम्पर्क में भी आ गया।

मुद्रणालय भी ब्रिटिशकाल की ही देन है। ईसाई मिशनरियों ने भी पाश्चात्य धार्मिक ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवादित करके प्रकाशित किया जिससे हिन्दी के संगठन को काफी बल मिला।

हिन्दी काव्य में रोमान्टिक धारा का प्रवेश भी आंग्ल-साहित्य की ही प्रेरणा है। शैली बर्ड्सवर्थ और कीट्स जैसे कवियों का हिन्दी के छायावादी काव्य को बहुत बड़ा योगदान है।

इस समन्वय काल में भारतीय विचारधारा का जबर्दस्त मंथन हुआ। उसमें संकीर्णता के स्थान पर नवीन उदार और व्यापक भावनाओं का जन्म तथा प्रसार हुआ।

हिन्दी और राजस्थानी साहित्य —

हिन्दी में आधुनिक युग की पूर्व परम्परा में रीति युग आता है। रीतिकाल की आसक्तियों और विदेशी शासन के प्रति विद्रोह के रूप में ही आधुनिक

काल को स्वीकारा गया है, लेकिन राजस्थानी काव्य के संदर्भ में विद्रोह का तथ्य पूरा पूरा मेल नहीं खाता।

समय तो बदला लेकिन राजस्थानी साहित्य की अपनी परम्परा के प्रति विद्रोह करने की आवश्यकता नहीं थी। डिंगल और पिंगल—दो साहित्यिक धाराओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह निर्णय ले पाना कठिन नहीं कि मात्र पिंगल की धारा ने ही विकृति की स्थिति में 'रीतिकाल' को जन्म दिया। डिंगल-काव्य धारा का आदर्श दूसरा था। वह वीरता के साथ बंधी रही। इसमें तो मात्र इतने से विकास की अपेक्षा थी कि उसकी पूजा का प्रतीक बदल जाय अन्यथा उसके लिये नये युगधर्म को ग्रहण कर पाना अत्यन्त कठिन था। वीर प्रशस्ति का रेकार्ड घिसते-घिसते काफी पुराना पड़ गया था, लेकिन उसमें नये स्वर नहीं भरे जा रहे थे। उसे इस स्थिति से आगे बढ़ना था। इसलिये राजस्थानी का आधुनिक काल परम्परा के प्रति विद्रोह न होकर परम्परा की भित्ति पर नये अभियान का सूत्रपात और तदनन्तर उसका विकास ही माना जाना चाहिये।

विद्रोह की चेतना का स्पर्श या आभास सरलता से हो जाता है लेकिन क्रमशः विकास को समझने के लिये स्पष्ट विभाजन-रेखा खींच पाना आसान नहीं। मेरी अपनी समझ में राजस्थानी काव्य की यही विशेषता उसे त्वरित मूल्यांकन के क्षणों में नई धारा या आधुनिकता की मान्यता प्राप्त नहीं करा सकी।

व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने से पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध समाप्त होते होते समूची भारतीयता को एक संगठन-सूत्र में बांधने के लिये हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी इसीलिये साहित्य के आलोचक अन्य भारतीय भाषाओं के विकास या पतन की साक्षी में खड़े भी नहीं रह पाये। अन्यथा यह समझ पाना कठिन नहीं था कि राजस्थानी-काव्य में नई चेतना की किरणें आज के एक शताब्दी पूर्व से ही विद्यमान हैं।

आधुनिक काल की सीमाः—

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना तथा पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क के साथ ही भारतीय साहित्य ने नया मोड़ लिया। किसी दूसरी संस्कृति और भाषा के प्रभाव में आने से काफी लम्बे समय तक भारतीय साहित्य अपना पृथक अस्तित्व नहीं बना पाया, फिर वा हिन्दी पर अंग्रेजी,

फारसी और उर्दू भाषाओं का जितना स्पष्ट प्रभाव पड़ा राजस्थानी ने उस सीमा तक अपने अस्तित्व को परिवर्तित नहीं होने दिया।

राजस्थानी साहित्य के शोध-कर्ताओं और आलोचकों ने राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल सं० १६०० से ही माना है अर्थात् सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की चेतना को ही आधुनिकता की प्रथम किरण माना जाना उपयुक्त ठहरता है।

तत्कालीन राजपूताने को एक साथ कई संघर्षों से जूझना पड़ा। छोटे बड़े राजाओं और जागीरदारों का आपसी द्वेष उसका आंतरिक संघर्ष कहा जा सकता है। और फिरंगी के शासन से मुक्ति पाने का आन्दोलन उसका बाह्य संघर्ष। एक ओर तो विलास की तराजूओं में पड़ी-पड़ी उनकी तलवारें जंग खा गई और उनका आत्मबल दुर्बल पड़ गया। दूसरी ओर आपसी द्वेष और वैमनस्य ने राष्ट्रीय चेतना और चरित्र को पतित किया।

तीसरी ओर, युग की गति के साथ बढ़ते जा रहे अंग्रेजी साम्राज्य और मराठा आक्रमणों से पीड़ित पतनोन्मुख सामन्ती रजवाड़ों के लिये अपने अस्तित्व तक को बनाये रखना अत्यन्त कठिन हो गया। राजस्थान में इसी समस्यामयी ने काफी आगे जाकर साहित्य में आधुनिकता को जन्म दिया और प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम (सन् १८५७) की जागरण-वेला में महाकवि सूर्यमल्ल ने राजस्थानी काव्य की नई संभावनाओं का द्वार खोल दिया। नई खोज रिपोर्टों से पता चलता है कि सन् १८५७ के वातावरण में राजस्थान के लगभग सभी कवियों ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है। 'परम्परा' त्रैमासिक के 'गोरा-हट जा' अंक में उन कई कवियों की ओजस्वी कविताओं से साक्षात्कार कराया गया है।

पृथक धाराओं का संगम —

पूर्व पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक राजस्थानी काव्य पूर्व-परम्पराओं को चुनौती न होकर उनका विकास मात्र है और सूर्यमल्ल का कृतित्व इसका साक्षी है। सूर्यमल्ल स्वयं दो पृथक धाराओं के मुहाने पर खड़े हैं। परम्परा और प्रगति की इन दोनों धाराओं पर सूर्यमल्ल का समान प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। एक परम्परा से बंधी रहकर भी उसे परिष्कार प्रदान करती जा रही है तो दूसरी नई चेतना नई अभिव्यक्ति और नये युगसत्य को लेकर अपनी वेगवती धारा को निरन्तर विकसित करती चली जा रही है।

सूर्यमल्ल की चर्चा करते समय बार-बार यह दुहराया जाता रहा है कि सूर्यमल्ल ने तत्कालीन कवियों की मौलिकता को नष्ट कर दिया था। जब सूर्यमल्ल का प्रभाव कम पड़ा तो राजस्थानी काव्य ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाया। कहा जा सकता है कि सूर्यमल्ल ने जिस चेतना को जिस सामर्थ्य से संभाला वह आने वाले कई वर्षों तक अन्य कवियों द्वारा उतनी सामर्थ्य से नहीं संभाली जा सकी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि सूर्यमल्ल जैसे प्रतिभा के धनी किसी भी भाषा को सरलता से प्राप्त नहीं हो पाते।

महाकवि सूर्यमल्ल —

चण्डीदान के पुत्र महाकवि सूर्यमल्ल वि० सं० १८७२ में जन्मे और वि० सं० १९२५ में स्वर्गवासी हुए[1]। उन्हें स्वतन्त्र प्रकृति के प्रखर और निर्भीक स्पष्टभाषी और निडर स्वभावाश्रित कवि और प्रकाण्ड पंडित के रूप में याद किया जाता है। वे संगीत-मर्मज्ञ और लोकोत्तर प्रतिभा के अधिकारी थे। चारणोचित स्वाभिमान और स्वातंत्र्य प्रेम उनकी नस नस में भरा था[2]। वे षट्भाषाज्ञानी और व्याकरण न्याय ज्योतिष आदि विषयों के पारंगत थे। उन्हें वीररस का सर्वश्रेष्ठ और डिंगल का अन्यतम कवि माना गया है। अनुभूति की सत्यता भावों की गंभीरता और अभिव्यक्ति की प्रांजलता उनके काव्य के आवश्यक गुण हैं। युद्ध रणभूमि सतीत्व और वीरोन्माद के विविध प्रसंगों पर उनकी लेखनी बार बार चली है। उनकी प्रतिभा को विश्वकवि रवीन्द्र से तुलनीय मानने में आलोचकों की महत्त्वाकांक्षा अनुचित प्रतीत नहीं होती। डा० मेनारिया सूर्यमल्ल को परिवर्तनकाल का सबसे बड़ा कवि मानते हैं और सं० १९०० से सं० १९५० तक के काल को 'सूर्यमल्ल-युग' का नाम देते हैं।

पाँच वर्ष की आयु में ही विद्यारंभ करके सूर्यमल्ल ने 'अमरकोष' के तीनों ही काण्ड तीन दिन में ही टीका सहित कंठाग्र कर अपने गुरु को सुना दिये। लिखा गया है कि दस वर्ष की उम्र में ही उन्होंने 'रामरंजाट' काव्य की रचना पूरी की जिसमें उनके आश्रयदाता बूंदी के तत्कालीन नरेश महाराव रामसिंह के शिकार और वनयात्रा का वर्णन है।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण विरचित ग्रन्थ का परिचय इस प्रकार है—

१ वंशभास्कर (पिंगल)	२ वीरसतसई अपूर्ण (डिंगल)
३ बलवंत विलास	४ छंदोमयूख

१ डा० मोतीलाल मेनारिया मृत्यु-संवत १९२० मानते हैं।
२ वीरसतसई (संपादकीय)

५. सती चरित्र ६ रामरंजाट
७ धातु रूपावलि ८ फुटकर कवित्त-सवैये ।

डा० मेनारिया प्रथम चार को ही उनका कृतित्व मानते हैं । मिश्र-बन्धुओं ने भी मेनारिया जी का समर्थन किया है ।

वंश भास्कर को संस्कृत के महाभारत के समकक्ष माना गया जिसमें अर्वाचीन काल के समस्त राजाओं का श्रृंखलाबद्ध इतिहास विद्यमान है । इसमें संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश पिंगल (ब्रजभाषा) डिंगल (राजस्थानी) आदि अनेक भाषाओं का प्रयोग किया गया है । वि सं० १९५६ में प्रकाशित वंशभास्कर के टीकाकार चारण कुलभूषण कृष्णसिंहजी शपथपूर्वक निवेदन करते हैं कि ऐसा सत्यवक्ता इतिहासवेत्ता अद्यावधि नहीं हुआ । यहाँ यह सन्दर्भ स्मरणीय है कि सूर्यमल्ल ने अपने आश्रयदाता राजा की भी झूठी प्रशंसा नहीं की चाहे वंशभास्कर का निर्माण वर्षों तक रुका पड़ा रहा ।

विलासी वातावरण के संस्कारों-वश वे घोर मद्यपी थे । मद्य पीकर जब वे काव्य सृजन करने लगते तो उनके मुख से अजस्र प्रवाहित काव्यधारा को दो दो लिपिकार तक नहीं लिख पाते थे । उनका सम्पूर्ण जीवन ही काव्यमय था । प्रथम पत्नी का देहान्त होने पर उन्होंने श्मशान में ही, दाहक्रिया से पूर्व कमायचों के साथ मिल कर गाया—

'ढाढी थी-भू बढ बोलो-म्हाने चाव है ।"

उनके काव्य में भावना और बुद्धि का सुन्दर समन्वय मिलता है । इतना स्पष्ट है कि उनके बुद्धि-पक्षीय पांडित्य ने कई स्थानों पर उनकी भाव-प्रवणता को अवरुद्ध बना दिया है । वंशभास्कर की द्वितीय राशि सप्तोदश मयूख में 'चहुआन युद्ध' का एक प्रसंग देखिये—

'उलटेहु सम्मुख ह्वै अवेरहु भट्टके भज ज्यों भुके ।
पग देत ज्यों भटपट्टरी धरनी धमी विलसी धुके ।
कुलटा मिलापुख नेहतें मिल तेल केलम पै करी ।
चलती कि मीरम पै त्रिलोकन कुम्भ तैनन पै चढ़ी ।।

पिंगल और प्राकृत मिश्रित भाषा का यह विशाल ऐतिहासिक महाकाव्य या चम्पू 'वंशभास्कर' सूर्यमल्ल का यशभास्कर ही है ।

'बीकम बरसां बीतियो गुण चौ चंद गुणीस ।
विसहर तिथ गुरु जेठ वद समय पलट्टी सीस ।।'

चेतना के स्वर—

सूर्यमल्ल रचित वीरसतसई का उपरोक्त दोहा (समय पलट्टी सीस) सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम की ओर संकेत है। जो स्वयं इस बात का भी साक्षी है कि वे तत्कालीन युग चेतना का आभास पा चुके थे अन्यथा विकृति जन्य सामन्ती खण्डहरों की सामर्थ्य को अस्वीकार करने और देश की स्थिति पर खुलकर आंसू बहाने का यह साहस सूर्यमल्ल को कैसे होता—

जिण बनभूल न जावता गैंद गवय गिड़राज।
तिण बन जंबुक ताखड़ा ऊधम मंडे आज।

वीर भावनाओं का मार्मिक चित्रण —

वीर सतसई के कवि को यह गौरव मिलना ही चाहिये कि सतसई के दोहों ने अपने प्रचार की सीमा के सम्पूर्ण क्षेत्र में जातीय शौर्य संगठन देशभक्ति और स्वाभिमान की मशाल जलाई। डिंगल-काव्य में जो राजस्थानी-काव्य की परम्परा की विरासत है लगभग सभी पृष्ठों पर युद्ध की रणभेरी बजती रही है लेकिन सतसई उस वीर काव्य-परम्परा को और अधिक आगे बढ़ा पाने में समर्थ हुई है। रणनाद तलवारों की झंकार, हाथी-घोड़ों की चिंघाड़ और हिनहिनाहट के सख्यात्मक वर्णन से भी अधिक एक नई बात सतसई में यह देखने को मिलती है कि उसमें वीरभावनाओं का मार्मिक चित्रण भी है, जो वीर-काव्य-परम्परा को सूर्यमल्ल की ही देन है। सतसई के वीर-काव्य की यह भाव-प्रवणता वीर-काव्य धारा का विकास है। सती और सूरमाओं के अन्तर्मन को टटोलकर सूर्यमल्ल ने उनके साहस और बलिदान को ही नहीं अपितु उनके दिलों की धड़कनों से भी हमारा साक्षात्कार कराया है।

सतसई की भाषा उत्तर-कालीन डिंगल मानी गई है, जिसमें कहीं कहीं प्राचीन डिंगल के प्रयोग भी मिलते हैं। ओज और प्रसाद गुण-सम्पन्न वीर सतसई में युद्धवीर का वर्णन है लेकिन यह वर्णन वस्तु-प्रधान कम है भाव प्रधान अधिक। वस्तुतः सूर्यमल्ल की यह अमर रचना राजस्थानी काव्य-धारा के आधुनिक युग का उद्घाटन करती है।

गदर के वातावरण में सूर्यमल्ल द्वारा लिखे गये पत्रों का बड़ा महत्व है जिनकी विस्तृत चर्चा वीर सतसई के सपादकों ने की है। उन पत्रों से पता चलता है कि उस स्वाभिमानी और स्वतन्त्र-चेता सरस्वती-पुत्र को स्वतन्त्रता की चेतना-ज्योति का प्रकाश मिल चुका था। आक्रमक फिरंगियों से मुक्ति पाने और देश को एक संगठन-सूत्र से बांधने की बलवती आकांक्षा लेकर वे जीवन भर अपने दायित्व पर सक्रिय रहे।

इसकीस

युगान्तरकारी व्यक्तित्व —

कोटा के स्वर्गीय कविराज मथुरालालजी महियारिया ने उनकी मृत्यु पर जो श्रद्धांजलि अर्पित की है वह इस प्रकार है— वीरभाण ईस के रस का धड़ा था कवि चन्द नायक था लेकिन हे सूरजमल ! मरुवाणी को सूर कन्धनीया श्रेष्ठवाणी तूने ही बनाया ।

अनेक किम्वदन्तियों के नायक सूर्यमल्ल के जीवन में भारी असंगतियाँ मिलती हैं, लेकिन उनके पांडित्य और उनकी सृजन-सामर्थ्य के सम्बन्ध में कहीं दो मत नहीं । सूर्यमल्ल ने स्वयं को निम्न विषयों का ज्ञाता माना है—

१ छन्द २ अलंकार ३ शकुनशास्त्र ४ नीतिशास्त्र प्रमुख अर्थशास्त्र ५ धर्मशास्त्र ६ कामशास्त्र ७ गणित प्रमुख ज्योतिषशास्त्र ८ शब्दशास्त्र ९ अभिधान कोष १० नायक नायिका लक्षण ११ साहित्यशास्त्र १२ संगीत शास्त्र १३ काल निर्णय १४ पुराण १५ वैशेषिक १६ पातंजल १७ उत्तर मीमांसा १८ हयलक्षण १९ शिल्पशास्त्र २० नरादिपशु परीक्षा २१ रत्न परीक्षा ।

डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि आज से १०० वर्ष पूर्व की राजनैतिक चेतना सर्वत्र एक सी नहीं रही । और १०० वर्ष पहले अकेला हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश था जहाँ अनेक जातियों ने मिलकर स्वाधीनता के लिये संघर्ष किया । स्वाधीनता का सच्चा अर्थ अंग्रेजी हुकूमत के पहले समझ में नहीं आया ।[1] सूर्यमल्ल के काव्य में उसी चेतना का उद्घोष है जिसके स्वर तत्कालीन कवियों से लेकर आज तक की वाणी में गूंज रहे हैं ।

सन् १८५७ से लेकर आज तक की पूरी एक शताब्दी में जितने भी कवि हुए, उन्हें प्रमुख रूप से दो धाराओं में विभाजित किया जा सकता है

१ प्राचीन शैली के कवि ।

२ आधुनिक शैली के कवि ।

सम्पूर्ण काव्य की मूल प्रेरणा और भाव धारा लगभग समान है लेकिन उनमें शैली की दृष्टि से अंतर मिलता है । प्राचीन शैली के कवियों ने परम्परा से प्राप्त छन्द और शब्द भण्डार तथा अभिव्यक्ति के माध्यम से ही अपनी भावनाओं को प्रकट किया है जब कि नई शैली के कवियों ने हर दृष्टि से नवीनता अपनाई है ।

अतः इन दोनों धाराओं की अलग अलग चर्चा करना उचित होगा ।

---

१ सन् १८५७ की राज्य-क्रांति—डा० रामविलास शर्मा ।

१ प्राचीन शैली—

बख्तावरजी—जन्म सं० १८७० मृत्यु सं० १९५१। यह ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों के अच्छे कवि थे। 'केहर प्रकाश' इनका सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रन्थ है जिसमें कमल प्रभा वेश्या और प्रेमी केसरीसिंह की प्रणय-गाथा है। अन्य रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं —

१ रसोत्पत्ति	२ स्वरूप-यश-प्रकाश	३ शम्भु-यश-प्रकाश
४ सज्जन-यश-प्रकाश	५ फतह-यश प्रकाश	६ सज्जन-विज-चन्द्रिका
७ संचारार्णव	८ अन्योक्ति प्रकाश	९ सामत-यश-प्रकाश
१० रागनियों की पुस्तक		

चारण रायसिंह—ईश्वर भक्त चारण रायसिंह मारवाड़ के गोडवाड़ क्षेत्र के मिरगेसर ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८७१ और स्वर्गारोहण सं० १९१७ में हुआ। यह भक्त कवि थे। साथ ही स्वयं बड़े बहादुर भी थे। एक बार जब वे रूपनगर गये तो रूपनगर के ठाकुर नवलसिंह के दरोगा मोती ने उनकी बड़ी खातिर की। रायसिंह जी ने प्रसन्न होकर 'मोतिया रा दूहा' नाम से १५० दोहे लिखे जिनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

१ 'सब सेठा सब जात हेम तणी संका हुती।
दुनिया गयो न साथ मरतां रायस मोतिया॥"

२ बीसमये वे सूर, छाटी पण छापी नहीं।
कीधी बात कसूर माया घण में मोतिया॥

३ "मायो गयो निभार ठामां रयो न ठेण रे।
गयो बीसम लार, माया छोडो मोतिया॥

कविराजा मुरारीदान—जोधपुर नरेश के आश्रित कवि मुरारीदान का जन्म सं० १८८६ में हुआ और मृत्यु सं० १९७० में हुई। डिंगल भाषा के बांकीदास इनके पितामह थे। इन्होंने 'जसवंत जसोभूषण' बनाया जो अलंकार ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। इसी ग्रन्थ पर इन्हें कविराजा की उपाधि मिली।

शिवबख्श पाल्हावत—जयपुर राज्यान्तर्गत हणोतिया ग्राम के पाल्हावत बारहठों के घर आश्विन शुक्ला ८ वि० सं १८९९ में जन्मे थी शिवबख्श पाल्हावत ने जब काव्य रचना शुरू की उस समय देश पुरानी रूढ़ियों और अन्य मान्यताओं को ठुकराकर देशभक्ति पतीतपूजा और आत्माभिमान की ओर बढ़ रहा था। श्री पाल्हावत काफी समय तक तत्कालीन अलवर नरेश

ठाकुर हनुमन्तसिंहजी के आश्रित रहे और राजा के रुष्ट होने पर उनका शेष जीवन वृन्दावन में बीता। राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता से प्रकाशित 'राजस्थान' में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। वे रीतिकाल के अंतिम चारण कवि थे। उनकी कविता में साहित्यिक परम्परा की कट्टरता नहीं पर उसके प्रति वे उदासीन भी नहीं। उनके काव्य का उदाहरण प्रस्तुत है—

'रसा बचन सुणि उठियो धग मोहै असराक।
साम कहै सुण बावली-तनशी जेठ तणाक॥
तनशी जेठ तणाक कहाऊं केहरी।
सही गरज नहि सीस क माथे मेहरी॥
मरण तणौं भय मानि भोगि तजि मानवै।
साम जनम बेकाज लाज कुल मानवै॥"

पाल्हावत जी ने शृंगार के उभय पक्षों की भी बड़ी सुन्दर रचनाएं की हैं।

ऊमरदान—तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य बाणों की मार्मिक चोट करने वाले स्वभाव से विनोदी प्रेम के पुतले और निर्भयता के स्वरूप देश-नरेश व प्रजा के सच्चे हितैषी विद्या और ज्ञान की लालसा में मग्न सरल और सरस कवि ऊमरदान का जन्म परगना फलौदी (मारवाड़) में बैसाख सु० २ वि० सं० १९०८ में और स्वर्गारोहण फाल्गुन सु० ११ वि० सं० १९६० में हुआ। बोलचाल की राजस्थानी भाषा में जिस पर जोधपुर की स्थानीय बोली का प्रभाव है आपने वीर हास्य और व्यंग्य प्रधान काव्य रचना की। भारतेन्दु काल में सामाजिक कुरीतियों पर लेखनी चलाने वाले लेखकों और कवियों के ही समान ऊमरदान ने भी रजवाड़ों की संस्कार एवं परिस्थिति-जन्य कुरीतियों पर तीखी मार की। आपकी भाषा शैली और सामग्री पर रामस्नेही संप्रदाय का भी प्रभाव पड़ा है। महर्षि दयानन्द से साक्षात्कार का प्रभाव भी आपके काव्य में मिलता है।

सं० १९५७ में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा को उदयपुर के सरस्वती भवन में आपने अपना परिचय Daily delightful Ummardan कह कर दिया। ओझाजी के अनुसार वे जन्मसिद्ध आशु कवि थे और उनके काव्य का राजपूताने में बड़ा आदर था। श्री जगदीशसिंह गहलोत ने 'ऊमर काव्य' नाम से इनकी कविताओं का संपादन और प्रकाशन किया है।

चौमीसि

श्री ऊमरदान के काव्य में समाज सुधार का विवेचन ही नहीं, रसों की मधुर धारा भी है। सरल और सरस काव्य में डिंगल काव्य का माधुर्य भी है।

श्री ऊमरदान की रचना रा ग्रंथ 'कलवार करामात' 'भवार को हाल' 'अफीम हूंदी' 'विभिचार की बुराई' 'दारू रा दोस' 'धर्म कसौटी' 'मीसम्मो' 'घमस रा मोगल', 'तमाखू री ताड़ना' 'कमियां का खोटा गुण' 'ठोला री तारीफ' और 'राठौड़ दुर्गादास की औरंगजेब ने अर्जी' आदि अत्यधिक लोक प्रिय कविताएँ हैं। श्री ऊमरदान ने राजपूतों के पतन पर ही नहीं फिरंगियों के फैशन और जुल्मों पर भी चोट की। छप्पय शिखरणी मधुभार वृत्त त्रिदुम नाराच त्रोटक दोहा, मोतीदाम सवमी गयर निसाणी, तिलोका कुंडली कवित्त आदि विविध छन्दों में आपने सरल और प्रेरणास्पद काव्य रचना की। उदाहरण प्रस्तुत है—

'महफलदार पुरुष अविनासी पुन काटत यह जम की फांसी।
मधु आदि फिर मथुरा काशी या ही के बस नहीं उपासी।

(कलवार करामात)

आदाब अर्ज उम्मेदवार, परवरिश करहु परवरदिगार।
बंदगी करैंगे महरबान जिन्सी नक्स जिनसे जहान।।

बिसकुल बिसारि वैदिक विधान कबहू पढ़ि है नहिं हम कुरान।
कटि शिखा सून-सुन्नत कराय जावें न मदीने प्राण जाय।।

(औरंगजेब नै अर्जी)

'मोटी माफी मांग अमलदारी धू अटक्यां।
देख सुधारण बखत-मारक जिम धोखू भटक्यां।।

हिंगलाजदान—सेवापुरा (जयपुर) में जन्मे स्व० श्री हिंगलाजदान कविया की अर्वाचीन काल के अत्यधिक समर्थ कवियों में गणना है। कुछ प्रशंसक इन्हें द्वितीय सूर्यमल का सम्मान देते हैं। आपने हजारों फुटकर कवित्त छंद गीत छप्पय, दोहे और सोरठे लिखे हैं। उनके मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१ मृगया मृगेन्द्र २ मेहाई महिमा ३ वाणिया रासो ४ प्रलय-पयोधर

मृगया मृगेन्द्र में तत्कालीन ठाकुर शेरसिंह (कुचामण) द्वारा किये गये शेर के शिकार का रोचक और सजीव चित्रण है। मेहाई-महिमा देवी शक्ति का नीराजन है। वाणिया रासो व्यंग है। एक उदाहरण देखिये—

'गाहट सूर मिगाट नेह बांका मह नामा ।
धग धावा उभड़ै सबै बिहुं अम्बर लागा ।।
खग खासम आ गैस—जाण कौतूहर झटपस्यो ।
गज्जों सहित मगर—होड भरपूर उमस्यो ।।
सबि सारदूल हाथल सबल जोम कमल मायै जडी ।
कलकाय गैल हुंती किया—अम्बर पर तड़िता पडी ।।'

बख्तेबदान कविया—श्री हिंगलाजदान के ही पुत्र थे जो चारण जाति के प्रथम स्नातक थे। आपने 'बख्तेस विनोद' की रचना की।

बालाबख्श —जयपुर राज्यान्तर्गत हणुंतिया ग्राम के चारण थे। काशी *नागरी प्रचारिणी सभा को ७००)* का दान देकर इन्होंने 'बालाबख्श-राजपूत-चारण-पुस्तक-माला फण्ड स्थापित किया जिससे राजपूत चारणों के ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। इनका जन्म सं १९१२ में और मृत्यु सं० १९८८ में हुई। डिंगल व पिंगल—दोनों भाषाओं में आपने १० ग्रंथ रचे। आपकी रचनाएँ सरस और भावपूर्ण हैं। भाषा पर पूर्ण अधिकार है और वह उक्ति-वैचित्र्य से सुभाषित हैं। उदाहरण प्रस्तुत है—

आधधपो बोल्यो कुरूडा बिरह कथर की बार ।
बेत भमती मामण्यौ कोच सुमर करतार ।।
कोच सुमर करतार—बिहूणी रतडी ।
पल पल बीती बाय जयान्धी ज्यू घडी ।।
काभि चलौ के बाव पयाणी ढूकडो ।
'बाहरि' हरि चीतारि, कहै इम कुरूडो ।।

रामदयाल कविया —श्री गम्भरदान कविया के पुत्र और 'रायसलवंश सरोज' के यशस्वी कवि श्री रामदयाल कविया का जन्म वि सं० १९२४ में सीकर के जसग्राम फतहसिंह की ढाणी में हुआ। तत्कालीन ठाकुर कुशलसिंहजी पाजडी ने सीकर का इतिहास तैयार करने के लिए बख्शी फूलालजी और रामदयाल कविया को आमंत्रित किया। बख्शीजी ने 'माधव वंश प्रकाश' और रामदयाल कविया ने 'रायसल-वंश-सरोज' की रचना की।

'रायसल-वंश-सरोज' करणीदान कविया के 'सूरज प्रकाश' और सूर्यमल्ल के 'वंशभास्कर' की शैली एवं परम्परा का काव्य ग्रन्थ है[1]। ९ पद्यों का यह ग्रन्थ वि सं १९५७ से शुरू होकर १ ॥ वर्ष कुछ महीनों में पूरा हुआ।

---

१ रामदयाल कविया और रायसल-वंश-सरोज (लेख)—श्री सौभाग्यसिंह शेखावत

ग्रन्थ ब्रजभाषा में है लेकिन लौकिक शब्दों का भी काफी प्रयोग मिलता है। ग्रन्थ का ताना-बाना परम्परागत चारण शैली का ही है। आपके रचित अन्य ग्रन्थ—

१ भारत आर्त शतक २ सुयश-शतक ३ देवी-स्तुति-शतक
४ ब्रह्मज्ञान-सोपान ५ उपदेश-पत्रावली ६ कल्याण सहस्रनाम माला
७ निशानी गुणमाला ८ मातम मरसिया और ९ फुटकर। उनके काव्य का एक युद्ध प्रसंग दृष्टव्य है—

'कुद्ध पीठि करक्कत दम्भि दरक्कत संकि सरक्कत कोल भज्यो।
झलसादि भलट्टत दब्बिर डट्टत भट्टत कम्पुकि काम भज्यो॥
मरदद्द बराह अरक्कत ये भतलाविक सम्प रहे उलटे।
बेद मारग जात संभार जहां फनि कम्पुसि धावि प्रधान फटे।

कविया गिरिवरदान—जोधपुर राज्य की बेतावरण तहसील में बाणवी ग्राम के निवासी थे। काव्य में अलंकार सौन्दर्य और उक्तियों का सफल प्रयोग मिलता है। कविया गिरिवरदान का एक गदर सम्बन्धी छप्पय देखिये—

'बरछी चमचहू बरस पड़े हम बैग पधारो।
बिकट लोक बचलियो साथ लायो उर सारो॥
कालो काली कमहू वाम कम्पनि उर कीनो।
लोक बकानो जाय चूट ऐरणपुर दीनो॥
अजराम भ्राट लागा वही धके दिली दिस धाडवे।
महाराज कीज भेजा भरत अरचर रुपिया पाडवे॥

नाथूदानजी बारहठ—जोधपुर जिले की शेरगढ़ तहसील के थांबू गांव के निवासी हैं। इनका जन्म सं० १९११ में हुआ। यह डिंगल के अच्छे कवि और विद्या प्रेमी हैं। इन्हें लगभग ६६ ग्रन्थ कंठस्थ हैं।

महाराज चतुरसिंह—महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के पुत्र बाघसिंह के वंशज स्व० महाराज चतुरसिंह का जन्म वि० सं० १९३६ में हुआ। आपका अन्तिम जीवन विरक्ति में बीता और वे कुटिया में रहे। आपने राजस्थानी और ब्रजभाषा-दोनों में कविता की। उनके काव्य में सचाई और स्वाभाविकता है। भावमयी और मौलिक होकर भी उनकी कविता उपदेशों से परिपूर्ण है। काव्य में 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की कसौटी पर भी चतुरसिंह श्रेष्ठ कवि हैं। प्रेम दिवानी मीरां के बाद मेवाड़ में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि के रूप में महाराज चतुरसिंह को ही याद किया जाता है।

रचनाएँ—१ भगवद् गीता की भेदाभामी टीका २ परमार्थ विचार ३ योगसूत्र की टीका ४ मोक्ष तत्व समाज की टीका ५ सांख्यका टीका ६ मानव मित्र रा चरित्र ७ शेष चरित्र ८ प्रमाण पचीसी ९ गुही अष्टक १० अनुभव प्रकाश ११ चतुर-चिंतामणि १२ महिम्न-स्तोत्र १३ कमलेश्वराष्टक १४ हनुमान-पंचक १५ समाल-बत्तीसी १६ चतुर प्रकाश।

आपकी रचना का उदाहरण देखिये—

भावै जी भुगताय दुखा सुख दीधे सभी।
सोता सु विसराय मत दीजो मावेसरी॥
कारज तो कहतो करे हर दीमै हरनाक।
वारी सूं होसे कहे हिये सिकाको राज॥

तेज कवि—स्वतन्त्रता प्रेमी तेज कवि का जन्म जैसलमेर में सं १६३८ में हुआ और फाल्गुन शु २ सं १६६१ को स्वर्गवासी हुए। 'स्वराज-बावनी' आपकी अत्यधिक प्रसिद्ध रचना है। तेज कवि ने कलकत्ता के स्वराज्य आंदोलन में भी भाग लिया था। उनकी बावनी पर महात्मा गांधी की विचार-धारा का प्रभाव भी प्रकट होता है। आपने कई 'ख्याल' और नाटक भी रचे।

केसरीसिंहजी बारहठ (कोटा)—कोटा के स्वर्गीय केसरीसिंहजी बारहठ को एक क्रांतिकारी साहित्यकार के रूप में स्मरण किया जाता है। बेगू बिजोलिया के आन्दोलनों में और अन्य क्रांतिकारी गतिविधियों में इनका भारी योगदान रहा। राव गोपालसिंह खरवा और ठाकुर मोडसिंह खरवा आदि क्रांतिकारियों के सहयोगी बारहठ केसरीसिंह एक जागरूक और सशक्त कवि थे। लॉर्ड कर्जन के इतिहास प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार के अवसर पर आपने उदयपुर के तत्कालीन महाराणा फतहसिंह जी को डिंगल के कुछ सोरठे (चेतावणी रा चूं गट्या) लिखकर भेजे और उन्हें अपने अभिलाषित पौरुष और स्वाभिमान की याद दिलाई—

'अवसर छारोभास राणा रीत कुल राजसी।
रहो सहाय सुधरास एकलिंग प्रभु आपरे॥
मान मोद सीसोद राजनीति बल राखणी।
(६) गवरमिन्ट री गोद फल मीठा दीठा नहीं॥'

बारहठजी की इस चुनौती से महाराणा की आँखें तो खुलीं ही साथ ही राजपूताने के रजवाड़ों में चेतना की एक लहर सी दौड़ गई और उनका तो पूरा परिवार ही क्रांतिकारी बन गया। 'लार्ड हार्डिंग बम केस' में इनके सुपुत्र

श्री प्रतापसिंह को अंग्रेजों ने फाँसी पर लटका दिया। उनका एक प्रसिद्ध दोहा दृष्टव्य है—

'कलबारा चोळा मरां सिमिट भयो सहपाण।
इला भी मरवार तरण पत, पातालाँहि परमाण॥'

'चुमेच्यु चापुक स्पर्श' नाम से आपने तत्कालीन राजाओं को लक्ष्य करके भी लिखा। 'तब और अब' लेखमाला में आपने देश के प्राचीन गौरव की तत्कालीन विषम स्थिति से तुलना प्रस्तुत की।

मानदान कविया—सीपपुरा (सीकर) के निवासी थे। इनके रचित तीन ग्रन्थों की जानकारी मिली है १ मंगलवंश-यश प्रकाश (८००० छंद) २ विरह-विलुराटी ३ फुटकर।

'मंगलवंश-यश-प्रकाश' वंशभास्कर परम्परा का ग्रन्थ है। इनकी मृत्यु ९५ वर्ष की आयु में सं० १९५१ में हुई। मानदान रचित एक दोहा देखिये—

'काठो मन्दिर सिर दियो आता दस अवरण।
इण काठो सूवो अमर रावसलोता रण॥'

उदयराज उज्ज्वल—मारवाड़ के कवला ग्राम में वि० सं० १९४२ में जन्मे श्री उदयराज उज्ज्वल को चारण जाति के रत्न की ख्याति प्राप्त है। आयु शताब्दी की तीन चौथाई सीढ़ियाँ पार कर जाने पर भी श्री उज्ज्वल सरस्वती-साधना में निरंतर संलग्न हैं। इन्होंने अपने जीवन में छोटे-बड़े २७७ ग्रन्थों की रचना की है जिनमें अधिकांश राजस्थानी के एक दो अंग्रेजी के और कई हिन्दी के हैं। इस कर्तव्यनिष्ठ साहित्यकार के पास हस्तलिखित ग्रन्थों और बिखरी हुई अन्य साहित्यिक सामग्री का विशाल भंडार है।

श्री उज्ज्वल ने राजस्थानी की बड़ी सेवा की है। उनके पिता भी अच्छे कवि थे। राजस्थानी भाषा, साहित्य और व्याकरण को सशक्त और समर्थ रूप देने में श्री उज्ज्वल की सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। सत्साहित्य का निर्माण उनके जीवन की सबसे बड़ी साधना है।

राजस्थानी भाषा के सही उच्चारणों की प्रगति में डा० टैसिटोरी और डा० डब्ल्यू० एस एलेन भी श्री उज्ज्वल के ऋणी हैं।

श्री उज्ज्वल की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ शृंगार (डिंगल) २ मारवाड़ रा वीर ३ कृष्णप्रकाश ४ मातृभाषा-दोहावली ५ भारत रा दूहा ६ स्वराज-शतक ७ उज्ज्वल-शतक ८ तेज-शतक ९ सर्वोदय-शतक १० श्रम-शतक ११ सती-शतक १२ आशीरवाद ६ नवगुण

पर दूहा ११ माला-शतक व कई ग्रन्थ।

राजस्थान-साहित्य-अकादमी 'उम्मेद ग्रन्थावली' के नाम से श्री उम्मेदजी के अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित कर रही है।

परम्परा के कवि होकर भी श्री उम्मेदजी ने कविता में नया रङ्ग भरा और उसे युग स्वर से गुञ्जरित किया—

"भारत देश सुजांण नेहरू की पूजी नहीं।
सेसनाथ सरवङ्ग भारी चाव्यो मोमिया॥
नेहरू चमक निसंक उडै स भारत ऊपरां।
परवत पाप पलेम भागै चितचित मोमिया॥"

नाथूदान महियारिया —

उदयपुर के चारण कवि श्री नाथूदान महियारिया का जन्म वि. सं० १९४८ (माघ) में हुआ। सती और सूर पर रचना करने में आप सिद्धहस्त हैं। महियारियाजी का काव्य चारण-काव्य-परम्परा की विरासत से ओत प्रोत है तथापि उसमें नवीन भावों और युगीन वातावरण की झाँकियाँ भी मिलती हैं। स्कूली शिक्षा की दृष्टि से मात्र तीसरी कक्षा पास यह कवि सरल-सरस सुबोध और सुन्दर भाषा में काव्य रचना करता है। अनुभूति मार्मिक और अभिव्यक्ति तीव्र है। सतियों का तो यह चूड़ामणि कवि है।

सूर्यमल्ल और वियोगी हरि की 'सतसई' परम्परा में महियारियाजी की वीर-सतसई का भी विशिष्ट स्थान है। बीसवीं सदी में महियारियाजी मध्यकालीन वीरों और वीरांगनाओं की ओर आकर्षित हुए, तथापि उसमें युगधर्म के अनुसार क्षात्र-धर्म की नई व्याख्या भी मिलती है। महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी (सीतामऊ) के मतानुसार 'साहित्यिक दृष्टि से भी यह वीर सतसई राजस्थानी भाषा का एक भावना पूर्ण अनोखा काव्य है जो चिरकाल तक उसके साहित्य को समृद्ध करता रहेगा।' 'वीर-सतसई' के अतिरिक्त महियारियाजी के निम्न ग्रन्थों की जानकारी भी प्राप्त हुई है—१ झाली-शतक २ हाड़ी-शतक ३ झाला-शतक ४ मोहन-शतक।

'वीर सतसई' काव्य के उदाहरण देखिये—

'जो करसी जिलसी हुती आसी निस रु दीह।
ए भाई जिकरा बाप री जमती रजपूताह॥
'जो पग पटके पौढ़ियो समर सिंधावे रात।
पूत-तणा पगपालणी झूंखसी जोमण मात॥'

मिलसी जद मरियाँ पछे, मरण अमोलक चीज ।
तरवर जद ही ऊमसी माटी मिलसी बीज ॥'

कविराज मोहनसिंह :—साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ से प्रकाशित पृथ्वीराज रासो के यशस्वी सम्पादक कविराज मोहनसिंह का जन्म वि० सं० १९५९ में मेवाड़ के बसी ग्राम में हुआ । कविराजजी डिंगल और पिंगल दोनों के कवि हैं । आपने बिहारी रसखान और सूरदास के कई छन्दों का भी डिंगल में पद्यानुवाद किया है । आपकी अभिव्यक्ति सरस और प्रभावोत्पादक है । छन्दों का आपको बड़ा अच्छा ज्ञान है और उन पर प्रभाव है । मोहनसिंहजी के काव्य में परम्परागत आलङ्कारिकता का भी विशेष समावेश है । आपके रचित ग्रंथ इस प्रकार हैं—

१ प्रताप-यश-चन्द्रोदय २ भूपाल भूषण ३ कुम्भा-कीर्ति प्रकाश ४ कूर्म यश-कलानिधि ५ मंगमार्ग प्रकाश ६ कुंडलिया-शतक ७ नीति-शतक ८ मोहन-सतसई ९ मृगया-बावनी १० महाराणा चरितामृत ११ राज-बहार १२ रघुवंश-चरित १३ मान-पचीसी १४ वणिक-बहत्तरी १५ प्रपंच-पचीसी १६ वैभव पचीसी १७ रामदास-पचीसी ।

रावत नरेन्द्रसिंह—सूर्यमल्ल की सतसई परम्परा में वियोगी हरि और मापूदान महियारिया की वीर सतसई तथा जोबनेर ठाकुर रावत नरेन्द्रसिंह की 'वीरपूजा-सतसई' का विशेष सम्मान है । आप डिंगल के कवि हैं और परम्परा से प्रभावित हैं । आपके काव्य में आलङ्कारिकता के साथ साथ चुस्ती भी है । डिंगल भाषा की सामर्थ्य रावतजी के काव्य में बड़ी खूबी से उतरी है । 'वीर पूजा-सतसई' के मङ्गलाचरण के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'बरणो मङ्गलाचार, अम्बर बरणो अमर पर ।
बरणो सिर दुआर—शरणी सावत स्याम रो ॥
बांका गढां बमीत माका बीरां गीतड़ो ।
अमर अडीव अचीत औखण वैभित बातड़ियां ॥

मुकुन्ददास खड़िया—बैंबाल (मारवाड़) के निवासी थे । आपका देहांत करीब ८ वर्ष पहले हुआ है । आपने भी 'वीर-सतसई' की रचना की जो अपूर्ण है । उदाहरण—

"कर टीका पट्टी करी सिकतावां सिरसांह ।
घोड़ा घावां ऊबरा, टापक टहटहतांह ॥

हीरा टीका हूर पर, बाबर मढ़ियम बज्ज ।
धुरा मेली सिन्धु-सबद ऊठ बिगाड़े ग्रन्थ ॥

सुमानसिंह:—यह सीतामऊ (महुआ) निवासी थे। इनका लिखा 'कालिया सतक' नीति-काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। राजिया के सोरठों के ही समान इस सतक के सोरठों का आदर है। सतक में राजनीति की प्रधानता है—तथा इससे कवि की वेदान्त और इतिहास की जानकारी का भी परिचय मिलता है—

'रावण राकसराज बिगड़यो जिण मारग बहुयां ।
उण मारग नृप आय बेराह चाले कालिया ॥
हुई बीमारी हाण मर रहम्या नाजुक नरा ।
बीरा रा बाखाण किण बिध चाले कालिया ॥

शम्भूदान आढ़िया—मेंथटिया (मेवाड़) के निवासी थे। आपने अफीम तम्बाकू आदि के दुर्व्यसना और सामाजिक कुरीतियों पर लिखा है। इनकी मृत्यु पौष वि. सं. १९९६ में हुई। काव्य का उदाहरण प्रस्तुत है—

"हुवै मरण मन हाण स्याणी कई सामी मधु ।
धन्नकणी आपाण भटकासी मर रै पछै ॥
करम कमाणी रो करै तिण सू हुवै तबाह ।
चोरी का चाक चलै वाह ! दुबारा वाह ॥

मनुकरण चारण—सीतपुरा (मेवाड़) के निवासी थे। इनकी रचनाओं में क्षात्र-धर्म की चेतावनी मिलती है, यथा—

"रावणराज हिरणेह, देखो मत बोध हुवो ।
आखिर धन धन एह, मिट्टी में मिल जावसी ॥

किशोरसिंहजी सोदा:—प्रसिद्ध कवि श्री कृष्णसिंहजी सौदा के आत्मज श्री किशोरसिंहजी पटियाला रियासत में इतिहासज्ञ के पद पर रह चुके हैं। 'करसी चरित्र' और 'हरि-रस' इनके सम्पादित ग्रन्थ हैं। पागल कवि के नाम से इन्होंने 'पागल-प्रमोद' की रचना की है। उनके काव्य का उदाहरण प्रस्तुत है—

"आगा में आगी महाराणी बिलसती ।
बाबर सा आबर भूल पन्थी उबारंती ॥
कायर नर बमणां रा कीना जतकारी ।
दीपक बरिया श्री पर वारूँ बलिहारी ॥

बलिहारी भारत हित-चिन्तक चारणां रे।
जनुभूमी ममतां रा भीचे चारणां रे॥

विजयदान —श्री विजयदान मारवाड़ के सरवड़ी ग्राम के निवासी थे और न्धे थे। लोक संस्कृति में रमे हुए इस कवि को सैकड़ों वार्ताएँ व कहानियाँ ाद थीं। दोहों में इनकी विशेष गति थी।

मुकन्ददान बारहठ —ये शेखावाटी के बड़े प्रभावशाली कवि थे। श्री ुकन्ददान बारहठ विरचित काव्य के सम्बन्ध में निम्न ग्रन्थों की जानकारी ाप्त हुई है—

१ चित्तौड़ का युद्ध (खण्ड काव्य) २ रजू बत्तीसी ३ अन्य फुटकर।

गोपालसिंह खरवा —केसरीसिंहजी बारहठ के समकालीन क्रांतिकारी कवि थे। इन्हें अंग्रेजों ने गिरफ्तार किया और उनकी जागीर जब्त कर ली।

कान्हीदान बारहठ —स्वर्गीय नवयुवक कवि मनुज देपावत के पिता स्व० श्री कान्हीदान बारहठ की मृत्यु लगभग १० वर्ष पहले हुई। यह डिंगल के गीतकार थे। आपने बुराईयों और कुरीतियों पर व्यंग्य किया तथा आदर्शों की स्थापना के लिये काव्य रचना का दायित्व निभाया।

बलदेवदान कविया—जिगसागदान के पुत्र श्री बलदेवदान कविया की शांत और हास्यरस की श्रेष्ठ कविताएँ मिलती हैं। सासरिये री सैल आपकी अति प्रसिद्ध कविता है।

गोपीदान बारहठ (देशभक्त):—फुटकर कविताएँ लिखते हैं। आपकी निम्न कविता प्रसिद्ध है — करतब याद करो रजपूत।
आलस छोड़ कमर कस अबको मरदां कर मजबूत।

कानसिंह भाटी—अंग्रेजी शासन और व्यापार पर कई व्यंग्य कविताएँ लिखी हैं। यथा—अंगरेजी रा तार-नखे कागज अंगरेजी।
अंगरेजी अखबार छपे खबरां अंगरेजी॥
अंगरेजी व्यापार पचब चीजां अंगरेजी।
अंगरेजी रोजगार और, सब कुछ अंगरेजी॥

रामसिंह सोलंकी —विशेषतः वीर और शृंगार रसों के कवि हैं। इनका एक दोहा देखिये—'बाप कट्यो मामड़ बली घर सूनो बाणीह।
पूत अंपूठो पूत मे राखे मिणराणीह॥'

भाटा भवानजी—जोधपुर राज्य के पांचेटिया ग्राम के निवासी थे। यह महाराजा रामसिंहजी के समकालीन थे। सिवायच कुम्भसिंहजी जोधपुर

के मोयडा गांव के निवासी थे। इनके गीतों में शुद्ध डिंगल और छप्पय-कवित्त दोहों में ब्रज मिश्रित राजस्थानी मिलती है।

बारहठ मुरारदानजी—सूर्यमल्लजी के मित्र और रतलाम नरेश बलवन्तसिंहजी के कृपापात्र थे। आपने डिंगल की उच्च कोटि की रचना की है। साढू रामदानजी नाली तहसील के मिरगासर गांव के निवासी और निर्भीक कवि थे।

बुधजी आसिया—बांकीदासजी के सबसे छोटे भाई थे। यह बड़े स्पष्टवक्ता और स्वतंत्र विचारधारा के व्यक्ति थे। आपकी कविता प्रौढ़ है।

सिरूमीराम रूपसा—उदयराजजी उज्जवल के पिता थे। आप हास्य रस की सुन्दर रचनाएँ करते थे।

महाराज मानसिंहजी—कलम और तलवार दोनों को गौरवान्वित किया। काव्य के अतिरिक्त वह अन्य कलाओं के भी प्रेमी थे। आपने राजस्थानी व पिंगल में कई ग्रन्थों की रचना की। आपके भजन विशेष लोकप्रिय हैं।

इन्हीं के साथ सर्व श्री तिलोकदान गजादान साढू, भारतदान गोपालदान आढ़ा आपूराम सांदू रामोदासजी सिढायच कुम्भसिंहजी हनुवन्तसिंह देवड़ा कु० रघुनाथसिंह राठौड़ मोतीसिंह राठौड़ सांवलदान आसिया मनोहरदान बीठू नवलजी लालस नाथूसिंह देवड़ा रामनाथसिंह कविया कुम्भसिंह खीची फागनमाल मोहता कु. आयुवानसिंह चन्डीदान सौभाग्यसिंह शेखावत सूर्यसिंह शेखावत और दामोदरप्रसाद आदि कई कवियों की रचनाओं से राजस्थानी कविता की परम्परा और परिपाटी को काफी दूर तक समझा जा सकता है। काव्य-परिपाटी और परम्परा के प्रति अत्यधिक आसक्त इन अधिकांश कवियों के शैली और भाव के दोनों ही पक्ष अतीत से बंधे रहे। यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें नवीनता है ही नहीं लेकिन यह वस्तुतः सत्य है कि उस पर पुरानी काव्य-परिपाटी की विरासत का ही मुलम्मा अधिक चढ़ाया गया। यही कारण है कि प्राचीन शैली के आधुनिक कवियों में नई कल्पना नये युग-धर्म और फिर नवीन सृष्टि-सौन्दर्य के प्रति उस मौलिक अनुभूति का अभाव रहा जो आधुनिक काल की नई धारा के कवियों में मिलती है।

(२) नई धारा

वीर सतसई' महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की कर्तव्य-परायणता का ज्वलंत उदाहरण है जो राजस्थान की जनता को तथा पथभ्रष्ट राजाओं को सही मार्ग दिखाने का प्रयत्न है। प्रारम्भ के कई दोहों में इस ओर स्पष्ट संकेत मिलता

है। महाकवि की इस चेतावनी का तत्कालीन और पश्चात् के कवियों पर भारी प्रभाव पड़ा। कहा जा सकता है कि समर्थ कवियों की सम्पूर्ण पीढ़ी ही अंग्रेजी साम्राज्यवाद और पतनोन्मुख सामन्तवाद की विरोधी हो गई। परम्परा की धारा (प्राचीन शैली) और नई धारा दोनों क्षेत्रों में इस विद्रोह के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं। बांकीदास गिरिधरदान शिवबक्सदान किसनदान राघोदास केसरीसिंह बारहठ नाथूराम कुमजी दलजी दुर्गादास, गोपालदान शिवदीदान और अन्य कई कवियों ने साम्राज्यवाद-विरोधी कविताएं लिखीं और रजवाड़ों के विशाल जन-मानस ने उन्हें नई चेतना तथा नये दायित्व के रूप में अङ्गीकार किया।

भारत में तत्कालीन साम्राज्यवादी हरकतों और दमन को समझने की यही मूल कुञ्जी है— आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहस लीधा खेंचि उरा। सारे देश के जिस्म की चेतना को निष्प्राण कर देना ही जैसे उसकी एक मात्र चारित्रिक विशेषता थी। उसकी संचालन-विधि के इस मूल मन्त्र को ठीक से समझे बिना उसके कार्य-व्यापारों को सही रूप में नहीं आँका जा सकता।[1]

सन् १८५७ के गदर के उपरान्त अंग्रेजों को भारत में अपनी नीति बदलनी पड़ी जिसके मूल कारणों में मरुभारती के सरस्वती पुत्रों की ओजस्वी और विद्रोही ललकार का कम योगदान नहीं रहा। वीरता और साहस राजस्थानी-काव्य-परम्परा का सहजगुण है और समकालीन सभी कवियों ने अपना यह उत्तरदायित्व बड़ी खूबी से निभाया। कई कवियों की रचनाएँ तो इतनी लोकप्रिय हुईं कि उन्हें लोक-गीतों का सम्मान प्राप्त हो गया।

राजस्थानी जन-मानस में राष्ट्रीयता की नई चेतना का शंख फूंकनेवाली कुछ कविताओं के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

तू मत आणी रे गोरा—लड़ै रे बेटो जाट को।
ओ कँवर लड़ै राजा दसरथ को रे—गोरा हट जा—
राज भरतपुर को रे गोरा हट जा।
भरतपुर गढ़ बाँको-किलो रे बाँको—गोरा हट जा।

(लोक-गीत)

१ 'इक आँकी बिण एकरी मूळे कुळ आभाव।
दूरी आलस एस में अकज गुमाई आव ॥

---

१ परम्परा' (गोरा हटजा अङ्क)—श्री विजयदान देथा लिखित ऐतिहासिक विवेचन।

टोटे सरकां भींतड़ा बाठे ऊपर बास ।
मारी में मद भूपणां—अणपतियां आवास ॥ (सूर्यमल्ल)

२ धजियो मतो भरतपुरवालो गाजे अम्बर बजर गोम ।
पहिलां सिर साहब रो पड़ियो—भड़ ऊभां नह दीधी भोम ॥
महि जातां चीथातां महिलां ए दुय मरण तणा अवसाण ।
राखो रे किहिंक रजपूती मरद हिन्दू की मुसलमान ॥
(कविराजा बाँकीदास)

३ धाम बांगी गोरा रमो छोड़िया न काई धायो ।
अभी सारी पापीएा छोड़िया नहीं पीण ॥
रोड़ियां नमारी नहीं मह माने टेक तो राजा ।
जिको छत्रीड़ियां नहीं हेकलो चोबारा ॥
(भामस नमजबी)

४ फिरंग अबै बल फैलिया—सब छूटी राहां टेक ।
पान अबी-अड़ पवन रो—ऊंचो रहियो एक ॥
(सांदू रामोदास)

५ शेखावत बलहर समर, फिर बलवन्त फिर साख ।
अभी शत्रु कण-कण पड़े भमहस ऊभां भीख ॥
(कविया गिरिवरदान)

परम्परागत डिंगल परिपाटी की इन कविताओं में विद्रोह की झलक मिलती है। इतना स्पष्ट है कि राजाओं के प्रशस्ति-गायन को ही अपने काव्य की चरम साधना समझ बैठनेवाले कवि अब युगीन वातावरण को पहचानने लगे थे। उनके काव्य में इसीलिये युगीन की छटपटाहट है।

राष्ट्रीय धारा

थोड़ा और आगे बढ़कर, जब अखिल भारतीय कांग्रेस और प्रजा-मण्डल के आन्दोलन तेजी पर आये और जब सम्पूर्ण राजपूताने में बिजोलिया आन्दोलन की ज्वाला धधकी तो राजस्थानी काव्य जन-मानस के सीधे सम्पर्क में आया। इस काव्य में राष्ट्रीय चेतना का उद्‌घोष था। इस काव्य में नई स्फूर्ति थी। लोगों ने देखा कि इस काव्य में राजस्थान के सामाजिक और राजनैतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है और इस काव्य के नायक राजस्थान के ही धरती पुत्र और उनके परिवार हैं। यह काव्य रजवाड़ी राजधानियों के कोट द्वारों की सीमा लांघ कर राजस्थान के जन-समुद्र से जा मिला। राष्ट्रीय चेतना की इस धारा ने राजस्थानी-काव्य-परम्परा का सम्पूर्ण स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया और उसमें जन-जन की वाणी मुखरित हो उठी।

रीतिकाल के राज्याश्रय में जो सृजन हुआ उसे मूलतः दो धाराओं में विभाजित किया जा सकता है। एक धारा में तो वह काव्य आता है जो नारी को नायिका के सैकड़ों भेदों-उपभेदों में विभाजित कर के सामन्ती विलास पर नित-नवीन रंग चढ़ाता रहा और दूसरी धारा का वह काव्य जो आश्रय दाताओं के पुरखों की वीरता का बखान करके या उन्हीं आश्रयदाताओं के काल्पनिक शौर्य को कवित्त देकर श्रेष्ठता का सम्मान प्राप्त करता रहा।

सैकड़ों वर्षों के बाद राष्ट्रीय चेतना का स्पर्श पाकर यह नई अभिव्यक्ति जब समाज में फैली तो पीड़ित और उपेक्षित जनता ने उसे अपनी आस्था से अभिसिंचित किया। काव्य में नये उत्साह की माँग और नई प्रगति की यह आकांक्षा अभिव्यक्त हुई। उस समय विजयसिंह पथिक हरिभाई किंकर, नानू राम शर्मा गोकुल भाई भट्ट जैसे देशभक्तों ने राजपूताने में नई चेतना जगाई। इस समय का काव्य-लोक काव्याभिव्यक्ति के अधिक समीप है और आगे जाकर इसी धारा का विकास प्रगतिशील काव्य के रूप में हुआ।

बिजोलिया आन्दोलन के समकालीन वातावरण का राजस्थानी काव्य अपने नये रूप का स्पष्ट परिचय देता है। राष्ट्रीय चेतना के इस काव्य को जनता ने एक राष्ट्रीय दायित्व के रूप में अङ्गीकार किया। सर्वश्री हीरालाल शास्त्री माणिक्यलाल वर्मा हरिभाई किंकर, जयनारायण व्यास और भैरवलाल 'काला-बादल' जैसे जनसेवकों ने सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लेकर भी अपनी सृजन-सामर्थ्य का बड़ा अच्छा परिचय दिया।

मेवाड़ के श्री दौलतसिंह लोढा ने भी राष्ट्रीय धारा में कई गीत लिखे हैं।

आधुनिक काव्य-धारा के इस प्रथम उत्थान को राजनैतिक जागरण की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि जन-मानस को आन्दोलित करने और उसे अपने दायित्व का भान कराने की दृष्टि से ही इस काव्य का अधिक महत्व है। यही राष्ट्रीय-धारा विकसित होकर जब प्रगतिशील धारा के रूप में प्रकट हुई तभी उसके साहित्यिक महत्व का अङ्गीकार किया गया। राष्ट्रीय-धारा की कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

"दुनियाँ की मामूली बातां फकड़ जाणे लोग ।
सत सूं दूणी तपे सनातन जमीं चौमटो रोग ॥
काम लपेट बरा नहिं रावे जासे सूधी सट्ट ।
जाणो फक्कड़ बणजा तू ही बैठक होजे ट्टू ॥
(हीरालाल शास्त्री)।

"उठ उठ मजूरों री सीख कमाई थारी थारे बच जावे ।
तू कात रेंटियो कपड़ो करसे पैसो घर में बच जावे ॥
कर मोच गाम री—जात पात री एकठ फेर सम्पत पा तू ।
थू जाट कुम्हार, चमार सभी भाई रो भाई बणजा तू ॥

(माणिक्यलाल वर्मा) ।

"मेहनत करसी वो ही पासी सुख सम्पत अधिकार ।
बैठ्या खासी जासो रमसी समझो नयो विचार ॥
म्हारा गांवां रो आधार प्यारा भारत रो आधार ।
खेती-मां करसो सहकार ॥'

(गोकुलभाई भट्ट) ।

"काला बादल रे,
अब तो बरसादे बलती आग
काला बादल रे ।" (भैरवलाल 'कालाबादल') ।

प्रगतिशील धारा

पूर्व पंक्तियों में यह निर्देश किया जा चुका है कि राष्ट्रीय धारा में ही विकसित होकर प्रगतिशील धारा का स्वरूप अङ्गीकार किया जो राष्ट्रीय धारा का सहज विकास है । इसी प्रगतिशील धारा को नई चेतना का दूसरा उत्थान कहा जा सकता है । अब राजस्थानी कविता मात्र प्रचारात्मक नहीं रही ।

यहीं राजस्थानी कविता अपना साहित्यिक अस्तित्व भी बनाती है । श्री रामनिवास हारीत केप्टेन मोतीसिंह और कँवर चोकसिंह जैसे कवियों ने राष्ट्रीय चेतना को नये परिवेश में सँवारा । सर्वश्री गणेशीलाल व्यास कन्हैयालाल सेठिया मुरलीधर व्यास मेघराज 'मुकुल' सुमनेश जोशी और सत्यप्रकाश जोशी आदि ने इन दिनों जो कविताएँ रची उनमें राजस्थानी प्रगतिशील काव्य राजस्थानी समाज के दुख दर्द और समस्याओं एवं महत्वाकांक्षाओं के साथ बंध गया । आगे जाकर राजस्थानी कवियों की सम्पूर्ण पीढ़ी की रचनाओं में ही प्रगतिशीलता का स्वर मिलता है । सर्वश्री रेवतदान चारण गजानन वर्मा स्व. मनुज देपावत गणपतिचन्द्र भण्डारी गोपीदान यज्ञराम 'पथिक' भीम पंड्या किशोर कल्पना कांत नानूराम संस्कर्ता सुमेरसिंह शेखावत तिलोक शर्मा बुद्धिप्रकाश पारीक और शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश' की कविताओं में प्रगतिशील काव्य मिलता है ।

राजस्थानी प्रगतिशील काव्य में परम्परा के घुटन और छटपटाहट, विवशता के प्रति विद्रोह आर्थिक और सामाजिक असंगतियों की कसमसाहट तथा नये अभिमान की अ रक्षा के स्वर मिलते हैं। उसमें जन-मानस की समस्याओं के प्रति हार्दिक सहानुभूति है, और है चेतना का नया उद्घोष जो पिटी हुई लीक और कथी-कमाई साम्यवादिता को चुनौती देकर नई सम्भावनाओं के द्वार खोलता है। इस धारा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१ 'रो मत राणी बेटी स्याणी अब दिन पलटो आयो।
आ दुख मावस मिटसी लाडो उगसी चाँद सवायो॥
बेटी आज कठै सी राखां पापी पेट सतावै।
थारा बाप थीं घर में मांगां मगता ले ले जावै॥
कोई देवो दाता रोटी म्हें मां-बेटी भूखी।
दीन दिना सूं कोर न पाई देवो रूखी सूखी॥'

(रामनिवास हारीत)।

२ 'साथी आ उमर कैयी बलसी।
कदसी आसी जिणी पेड़ री आज मुला ले मुलसी॥

(कैप्टेन मोतीसिंह)।

३ आज रणबंका सिपाही—
राज रा सस्तर मुवा है भार सूं अक्कस लवा है।
सैन सुण धूम धाम रैणो इण जमाने री हवा है।
आज जाग्रत सीस में बरती समाई—
आज रणबंका सिपाही।

(गणेशीलाल व्यास)।

४ 'होठां पर मुलकै विसगाणी आंसू में टसकै विरगाणी।
जीवण री बलती ज्योत तले नित मरणू सीखे विरगाणी॥

(कन्हैयालाल सेठिया)।

५ "काल मिटै बरसां रो-करसो बांध कमर जद चाले
सोना चांदी निपजै-अम्बर मोतीड़ा बरसावे॥
बिण मरवां रे मूं कै मूंड़ां ने भाजै बड़ जावै।
सेठड़ा मतकारो॥'

(सत्यप्रकाश जोशी)।

६ भूकम्या महल मजूरी भूखी छप्पर पड़या पुराणा।
पड़ी मजारूयां काज न आवै-पेट मांगसे दाणा॥
डेरा ए दिन सदा न रैसी पुरवा धूम पिछाणो।

मुळक्या महल मजूरा भूखा छप्पर पड़्या पुराणा ॥
स्याम चौपड़ी काढ़ सजी रे भाई सटक गली ॥
(गजानन वर्मा) ।

७ "धाण भंवर मत थरां पधारो ओर नहीं गरजी रो म्हारो ।
मनै नहीं दुख मैं तो जाऊं, धरती नै चेतन कर जाऊं ॥
अब तो बिजली वैरी पड़सी मिनखां रा वैरी सौ बलसी ।
पौ फाटी आयो परभात कुणखा री तो कटसी रात ॥
थेई सम्भालो थांरो काम दूजो किया जियाऊं थो नाम ?
दूजो किया जियाऊं थो नाम ॥ (भिमराज 'मुकुल') ।

८ ए विकसे री जोत क्रांति री भू पड़ियां सूं लपट उठा वै ।
धरो पग सूं नया झपेटा महलां री चोटी पहुँचा वै ॥
जका जोस मिरघाण री नींद्या महलां में सुणसूं पोढ़्या है ।
थारी जागी नींद तोड़ तू बेठो थके करारी रहबे—
ए विकसे री जोत ! थने तू एक धरी सी पाली रहजे ॥
(भीम पंड्या) ।

९ पापी बैठ्या मौज करे है धरती भूखें मारा मरती ।
गली गली में फरे भेड़िया भेड़ां आमै डरती डरती ॥
(त्रिलोक शर्मा) ।

१ "मैं भूखो हूँ—मैं तीसो हूँ पण थारो दरद मिटाऊंला ।
माता रे दूधे री सौगन मैं कदे न पाव हटाऊंला ॥
(श्रीमन्तकुमार व्यास) ।

११ थारे हीरा मोती लटके म्हारे आंसू टपके रे ।
थारी सेजां फुल फुल मुलके म्हारी सेजां कळपे रे ।
म्हारे बीत्यो मान थारे मटे सीरणी गली गली ॥
(शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश') ।

१२ 'अन्धकार मत जाण थामला इनकिलाब री छाया है ।
इण भाग बदलिया सागा रा केई राजा रङ्क बणाया है ॥
रे मा बा भोली हुवी जका के मरती बैला आवे है ।
आ नागण काला जहर जका डाबां में हमरत लावे है ॥
इण सु भाभोर रे आंगण में इक जोत जुपे है जगमगती ॥
(रेवतदान चारण 'कल्पित') ।

वाणीच

गीतों की धारा

'दर्द को गहनाइयों में सुन
गीत की गहराइयों में सुन—
गीत है सागर अमर, सङ्गीत मथन है।
व्यक्ति का अभिव्यक्ति में अनुभूत विसर्जन है।
गीत वाले राजपथ पर तू, व्यर्थ जाकर हाथ मत फैला॥

वीरेन्द्र मिश्र

गीत काव्य की आत्मा है। भावों की सरल सरस और मार्मिक अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम गीत ही है। अनुभूति का दर्द जब गीत बनकर फूटता है तो उसकी संवेदनशीलता बढ़ जाती है। रचनाकारों की यह भी मान्यता रही है कि गीत रचनाकार की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है। दो तीन या चार छन्दों में सिमटा रह कर भी गीत कल्पना के विराट परिपार्श्व को ललित संकेतों में अभिव्यक्त करता है।

राजस्थानी के आधुनिक गीतकार समय की सामाजिक और पारिवारिक स्थितियों तथा प्रकृति-चित्रों को बड़ी कुशलता के साथ गीतों में उतार पाये हैं। राजस्थानी के गीतों में धरती की आत्मा जागी है और काव्य के शब्द-नाद में उसकी गूंज सुनाई देती है।

सर्व श्री कन्हैयालाल सेठिया सत्यप्रकाश जोशी मेघराज 'मुकुल' सुमनेश जोशी गजानन वर्मा रेवतदान चारण भरत व्यास नारायणसिंह भाटी, किशोर कल्पना कान्त स्व० मनुज देपावत चन्द्रसिंह गणेशीलाल व्यास मनोहर शर्मा 'विमलेश', गङ्गाराम पथिक रावत सारस्वत राजलक्ष्मी देवी 'साधना' मदनगोपाल शर्मा मनोहर प्रभाकर, कमलाकर रामनाथ व्यास 'परिकर' जबरनाथ पुरोहित भीम पंडिया शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश' रघुराजसिंह हाड़ा भैंवरजी हाड़ा कल्याणसिंह राजावत चन्द्रकुमार 'सुकुमार' लक्ष्मणसिंह रसवन्त' महेन्द्र भानावत बुद्धिसंकर त्रिवेदी नारायणदत्त श्रीमाली गिरधरलाल आचार्य और किंकर कवि जैसे और भी कई नाम हैं जिन्हें राजस्थानी के गीतकारों में गिनाया जा सकता है।

इस वर्ग में कई प्रकार के गीतों का समावेश है। जैसे—१ प्रगतिशील गीत २ लोकधुनों पर आधारित ध्वनि-गीत ३ गीत कथाएँ ४ कल्पना प्रधान गीत आदि आदि। साथ ही सृजन-सामर्थ्य की दृष्टि से भी, उपरोक्त कवियों की विभिन्न श्रेणियाँ बनती हैं जिनके विस्तृत विवेचन की यहाँ गुंजाइश नहीं

है। कुछ ऐसे हैं जिनमें कल्पना तीव्र है लेकिन अभिव्यक्ति में संतुलन की कमी है। कुछ अनुभव-जन्य विचारों को तीव्र और पुष्ट अभिव्यक्ति तो वे पाते हैं लेकिन संवेदनशीलता उतनी सशक्त नहीं। कुछ ऐसे भी हैं जो लोक-वातावरण के एक ही प्रभाव को विभिन्न चित्रों में संजोते चले जाते हैं जिसके फलस्वरूप रूढ़ उपमानों में उन चित्रों की पुनरुक्ति भी होती है। लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनके गीत पूर्णरूपेण गीत हैं और उन गीतों के प्रति सिवाय सराहना के और कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

जहाँ गीतों की मौलिकता और सार्थकता की चर्चा है वहाँ राजस्थानी काव्य महती प्रतिष्ठा का अधिकारी है। नयी पीढ़ी के गीतकारों में नये भाव नयी कल्पनाएँ और नये स्वरूप सभी कुछ नया है फिर भी लगता है जैसे उनके संस्कारों में परम्परा का सङ्गीत गूँजता है। परम्परा को यथावत् स्वीकार करना और बात है तथा परम्परा से लाभान्वित होकर उसकी भित्ति पर नया सृजन करना दूसरी बात है। इस दृष्टि से राजस्थानी गीत-काव्य राजस्थानी लोक-काव्य के अधिक समीप है। सरलता और सरसता तो काफी दूर तक वही है। हाँ! साहित्यिकता की दृष्टि से वे किंचित ऊँचे धरातल पर हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे लोक-काव्य से सीधे प्रभावित हैं, अपितु यह है कि राजस्थानी काव्य की अभिव्यक्ति अपनी भूमि लोक-वातावरण और लोक-सङ्गीत की आत्मा को छूती है। वह जिस वातावरण की उपज है, वही वातावरण उसकी अनुभूति और प्रेरणा का पोषण करता है।

श्री कन्हैयालाल सेठिया राजस्थानी और हिन्दी के गिने चुने श्रेष्ठ गीतकारों में से हैं। कुछालोचक में जमे-जमे श्री सेठिया के काव्य में 'बच्चन' जैसी भावुकता महादेवी जैसी कोमलता और प्रसाद जैसी दार्शनिकता है। उनकी 'मेरा युग' और 'दीपकिरण' पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। तीसरी पुस्तक 'पातळ्स्याँ' (राजस्थानी) शीघ्र ही प्रकाश में आनेवाली है। 'रमणियैं रे सोरठे' और 'मींझर' उनके राजस्थानी काव्य-सङ्कलन हैं।

श्री मेघराज मुकुल प्रान्त के श्रेष्ठ गीतकार हैं। वे राजस्थानी में हिन्दी से भी अधिक सशक्त और समर्थ अभिव्यक्ति दे पाते हैं। लोक-वातावरण और मरु-संस्कृति से अनुप्राणित आपके कई गीत कवि-सम्मेलनों में सर्वाधिक लोक-प्रिय हुए हैं। 'किरण तावड़ो' श्री मुकुल का अप्रकाशित राजस्थानी कविता संग्रह है। वे राजस्थानी के सरस गीतकार और श्रेष्ठ प्रगतिशील कवि हैं।

श्री रेवतदान चारण के गीतों में सामयिक भावनाओं की सशक्त

अभिव्यक्ति मिलती है। क्रांति का स्वर उनके काव्य की विशेषता है। इसके अतिरिक्त भी रेवतदान प्रकृति चित्रों को भी बड़ी खूबी से उतार पाते हैं। 'चिरमी बीरणी' उनकी अत्यधिक लोकप्रिय कविता है।

स्व० मनुज देपावत से, जो गत १८ मई १९५२ को बीकानेर-रतनगढ़ा रेल दुर्घटना के शिकार हो गये, राजस्थानी को बड़ी आशा थी। उनके काव्य में स्वाभाविकता और युग चेतना मिलती है।

मारवाड़ क्षेत्र में युग-चेतना का शङ्ख फूंकनेवाले गणेशीलाल व्यास ने एक समय लोक-कवि की ख्याति अर्जित की है। उनके गीत हलधरों की प्रेरणा बने। ग्रामीण जीवन और वातावरण पर आधारित आपने सैकड़ों गीत लिखे हैं। नृत्य-नाटिका और संगीत नाटिका लिखने में भी वे अग्रणी हैं।

राजलक्ष्मी देवी 'साधना' के गीतों में मिठास तथा भक्ति और भावुकता का मेल मिलता है। वे आध्यात्मिक सिद्धियों से अनुप्राणित हैं। 'बेताबणी रा चूंगटया' के कवि स्व० श्री केसरीसिंहजी बारहठ की पौत्री साधना जी में काव्य-सृजन की विलक्षण प्रतिभा है।

गजानन वर्मा के गीतों में राजस्थान की प्रकृति हरे-भरे खेत ऋतुएँ, जीव-जानवर, मिनख-मजूर सभी का समावेश है। उनके गीतों की शैली मौलिक है, जिसे जब वे परिष्कृत और सरस लोक-धुनों से अभिसिंचित करके गाते हैं तो राजस्थानी गीत अपनी सामर्थ्य का सशक्त परिचय देता है। श्री गजानन वर्मा मङ्गाराम पथिक और कल्याणसिंह राजावत ने श्रेष्ठ ध्वनि-गीत लिखे हैं।

श्री नानूराम संस्कर्ता प्रकृति के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति को अपने [illegible] सौन्दर्य में चित्रित किया है।

श्रीमन्त कुमार व्यास प्रतिभाशाली कवि हैं। उनके स्मृति-गीतों में ([illegible]) में मार्मिक भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। 'हमिसाय रो [illegible] [illegible]' में रणात्मक प्रगतिशील गीत है।

रघुराज भारद्वाज 'राकेश' हाड़ौती क्षेत्र के कवि हैं [illegible] हाड़ौती का वातावरण बोलता है।

श्री महेन्द्र भानावत लोक-साहित्य के अनुसन्धान [illegible] हैं। उनके गीतों में लोक-वातावरण मुखर है।

श्री सोनाराम [illegible] 'प्रकाश' के 'लोकगीत [illegible]' रचे हुए गीत हैं। गीतों में समाज-सुधार का [illegible]।

श्री भीम पंडिया की पुस्तक 'हाम सू कतर सीरों बोरसो' प्रकाश में आई है। उनके गीतों में सरस अभिव्यक्ति और नई चेतना के स्वर मिलते हैं।

श्री किशोर कल्पना कांत की 'हेलो' पुस्तक में उनके सुन्दर गीत संकलित हैं। 'सुपना रो मरम' उनकी अप्रकाशित पुस्तक है।

भोवा के कान्ह महर्षि की कविताओं का संग्रह 'गुणबन्ती' नाम से प्रकाशित हुआ है।

श्री रामनाथ व्यास 'परिकर' के गीतों में प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्यानुभूति है। उनके गीतों में कुछ नये प्रयोग भी मिलते हैं।

राजस्थानी के कुछ प्रमुख गीतकारों की रचनाओं के उदाहरण देखिये—

१ 'आभै में उड़ता खग नमस्या
धेनी में बहता पय नमस्या।
हीको सो फूट्यो धरती पर,
औ कुण नमस्या ? औ कुण नमस्या' (कन्हैयालाल सेठिया)

२ आंगण में दो चुगे चिड़कल्यां
बिखरेड़ी मोठां री दाल।
मोटी मणव सू मरै काड़ै
चुन चुन साफ करै है ठाण॥ (गजानन वर्मा)

३ 'सावन सावण मस्त बिरखा बूंदा' री झणकार।
मोर देखा वन रमी नाचण लाग बहार॥
हरया-हरया जोबन भरया बाजरियां रा खेत।
पावस रस सूं सिंच गयी मीठी बालू रेत॥
(भागीरथ मगेरिया)

४ दो मटका रे मा रल् पाणी आंगण् भाली-रेत पचाड़ी।
कल्यां पैली प्राण मरैली धीच अठै तक आये नाही॥
ओ रे माता बक मत माई-बक मत माई।
(गणेशीलाल व्यास)

५. कोई मरवो बजावे आंगणियै हीण्डू झुलावे।
पीळ पंछेवड़ गीत सुणावे किरत्यां नाच नचावे॥
सांझ गिगन में राग रंगीली छिबियां कुण चितरावे।
दूनो कोई रातड़ली में कुण इमरत बरसावे॥

नैणा रिझावै मन मुलकावै रूपाँ रास रचावै—
ओ कुण मुक छिप आवै । (रावत सारस्वत)

६ 'हूं हिवड़े में हरखाऊँ—ऐ चमक चाँदरणी रात ।
धोरिये बैठ गीतड़ो गाऊँ,—जद ठंडी भंवरी घुम चले ।
(भीम पंड्या)

७. 'घूम झूम बादलियो चावै बादळ घिर घिर आवै ।
चामे में मुक छिप पलका कर बीजळियाँ झिलमावै ।।
हिवड़े हूक उठे धरती रे—आँसूड़ा ढळकाव ।
वाँ बिण धरती कुरै साजना असड़ा हिवड़ा ठारे है ।
धरती हेलो मारे है ।
(नारायणदत्त श्रीमाली)

८ बोलग्यो ओ बोलग्यो पापी अब कठै मत बोल वैरी ।
रात बाकी मोत थोड़ी था थठै मत धीर ठेरी ।।
एक सुपनो टाबरी री रात है मत हेर टेरी ।
धणु मनेरयो धीर भाग्यो रात भर बोल्यो पपैयो—
ओ घणो चूकमी पपैयो ।।
(किशोर कल्पनाकांत)

९ इण बार हिये री आज चोट मुई सावण में—
छेयी मैं ही समझाय लियो ।
निरमोही पिव री बात याद में याद में—
पलकाँ री ओ मुकाम लियो' । (रामदेव आचार्य)

१० 'साम रंग रा साळुला, मत लाल कराचे धरती मैं
मत मोला चाँदी री चादर, बागाँ लकड़ी में-साची कहूं दीवे
बार रे चूनमाँरी चोटी याद वे दीवे—उड़ती कोयलड़ी ।
(कल्याणसिंह राजावत)

११ 'मुळकती दिपतो भंवर मोट, निरखवा आई ओ संसार ।
मदुमती आली पीली वाम मुलकता मैणाँ सुरमो सार ।।
(नारायणसिंह भाटी)

१२. 'भामवती ज्यूं प्रेम बावळी सासू कँवर ज्यूं मोर ।
वा बरसे मोत्याँ री चूनी—ओ नाचे रस मोर ।।
पी पी राग सुणावे—

हिवड़े री वीणा बाजे एक सी—रमतार कँपावै ॥

(मनोहर शर्मा)

१३ 'एकटक नैणां देखो ताके—मीठो मारग पावेली ।
नींदड़ली रै पेली सपनो साचो हो दरसावेलो ॥

(रघुराजसिंह हाड़ा)

१४ 'मन री चौकी मूंडो बोले काग डागले बोले हो ।
धूणा ऊपर हँसे केलड़ी नेड़पां मोरया बोले रो ॥
आज म्हारे कोई न कोई पावणियो पधारे सा ॥

(महेन्द्र भानावत)

१५ 'चौकरी चढ़्या चाकरी रे—बरस बीतग्या पांच ।
सावण दीसे सावको रो नाच मोरिया नाच ॥
पोल हूँ मोतीड़ा मेंगाय मोरियो बोल्यो मेंडी माम ॥

(हनुमाना पुरी)

१६ 'कांठी बरखा बणोला छेंड्या सूखे ताल ।
पोंछी उड़े मकाणा पण धूण काटे पांव ॥
सपना हरिया रूँख नेस्यां बाजे सूल ।
सोमा मड़के बीजल् बाम्यां बाजे सूल ॥

सरवर बारी पाल्
खारा दीसा सूल्
बणग्या धूलामाल्
सरवर बारी पाल् ।

(सीविनाथ भारद्वाज 'राकेश)

१७ 'सिरया वेसा रंग-बिरंगी सदा सुहागण फूली रे ।
सोना रो सूरजड़ो ऊग्यो चौपा लायो भरी गुलाल् ।
धूरणी री जोड़ी पण बाजी कर सरवर री सूनी पाल् ।
मिनख मजूरी सू घर साबा कीधा मायै मेल सुगाल् ।
पणिहारयां पणघट सू आवे सुंदरी सुंदरी चाली चाल ।
पीपल्-डाल् धुकल्यां बैठी हींन्डो दे दे झूली रे—
सदासुहागण फूली रे ।

(बुद्धिप्रकर त्रिवेदी)

प्रकृति–चित्रण

सृजन-परम्परा का इतिहास साक्षी है कि कवियों ने जब जब प्रकृति की उपेक्षा की तब-तब उनके काव्य की गरिमा घट गई, उनकी कल्पना शिथिल और जड़ हो गई, उनकी स्वच्छन्दता के पङ्ख कट गये और वे विभिन्न संकुचितताओं एवं विकृतियों में फँस गये। प्रकृति-काव्य का सर्वाधिक पोषक तत्व है। जब कवि घर की चारदीवारी की सीमा तोड़ कर उन्मुक्त-वातावरण में साँस लेता है, तभी उसकी कल्पना अनुभूति के मौलिक सोपानों पर चढ़ती है। प्रकृति और मानव का अविभाज्य सम्बन्ध है।

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल–जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन ?   (सुमित्रानन्दन पन्त)।

कवि प्रकृति के उपादानों में अपनी मनःस्थिति की उद्घाटक प्रतीक खोजता है। उसकी आन्तरिक प्रकृति का जब बाह्य प्रकृति से साक्षात्कार होता है तो उसकी घनीभूत सम्वेदना काव्य में मुखर हो उठती है। प्रकृति मानव को नयी ताजगी देती है, और देती है मौलिक एवं अनूठी कल्पना। प्रकृति के चितेरे महाकवि कालिदास और वर्ड्सवर्थ के काव्य में से प्रकृति हटा देने पर क्या बचता है ?

राजस्थानी में नयी धारा के कवियों ने प्रकृति को विविध रूपों में सँवारा है। नारायणसिंह भाटी की 'सांझ' चन्द्रसिंह की 'लू' और 'बादली' नानूराम संस्कर्ता की 'दसदेव' और 'कल्यायण', गजानन वर्मा की 'धरती री धुन'-पुस्तकें प्रकृति-काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

'सांझ' नारायण भाटी विरचित खण्ड काव्य है जिसमें मरुभूमि की संध्या का सर्वांग सम्पूर्ण चित्र उतारा गया है। सांझ के चित्रण के साथ-साथ कवि अपनी अन्तर्भावनाओं को जोड़ता चल कर प्रसङ्ग की मार्मिकता को बढ़ाता है। सांझ वस्तुतः प्रकृति और प्रेम का सुन्दर समन्वय है।

कुमाणा करसा अणमिणा तीर, भिरम से नाखो भी इक बाण।
मिटै किमि जग में किणी जाण, चन्द री मन्द हँसी रो मान॥
पासवी हीड़े मेल्हा बाज, नावड़ी हाथरिये हुलराय।
कंठ में घलके नेह अपार, हिये रा हार हिलोळा खाय॥

भी भाटी में अनुभूत प्रकृति-चित्रों का अपनी मनोभावनाओं से सपृक्त

करके उसे सशक्त अभिव्यक्ति देने की बड़ी सामर्थ्य है और 'सांझ' प्रकृति काव्य उसका सुन्दर उदाहरण है।

श्री चन्द्रसिंह राजस्थानी-साहित्य-सरस्वती के उन तपस्वी साधकों में से हैं जिनका व्यक्तित्व कवित्व से पृथक नहीं है। चन्द्रसिंह मूलत कवि हैं तद् पश्चात् कुछ और।

'लू' और 'बादली' चन्द्रसिंह के प्रकृति-काव्य हैं जैसा उनके नामों से ही स्पष्ट है। राजस्थान मरु-प्रदेश है। यहाँ रेगिस्तान की उष्णता को और अधिक तपा और औंधा देने वाली लूएँ निरन्तर चला करती हैं। वर्षा के बादल की उपलब्धि यहाँ सरलता से नहीं हो पाती। मानसून की गिनी चुनी हवाएँ दिशा भूलकर इधर आती हैं और गिनी चुनी घड़ियों के लिए लोगों का मन हरषा कर पुन उड़ जाती हैं।

'लू' और 'बादली' राजस्थान में ग्रीष्म और वर्षा की स्थितियों का यथार्थ और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करने वाले काव्य हैं। दोनों प्रकृति-काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। चन्द्रसिंह की शैली में सजीव चित्रोपमता है।

'बादली' में जीव-जगत पर वर्षा के प्रभाव के परिचायक ११० दोहे हैं। निम्न पंक्तियों में वर्षा-आगमन के आनन्द और उल्लास का वर्णन देखिये—

'घटा टोप आभो घिर्‌यो छायो धूंध घर राव।
आची बीजा चूक रो हियो हिलोळा खाय।।
अम्बर में उमड़ी घटा आभै अटकी आंख।
चड़ चड़ आता चोंच में मोर संवारै पांख।।'

(बादली)।

श्री नानूराम संस्कर्ता का कळायण (कालीघटा) भी प्रकृति-काव्य है। प्रो. नरोत्तमदास स्वामी के मतानुसार प्रकृति और मानव-जीवन का जैसा संश्लिष्ट वर्णन इस छोटी सी रचना में हुआ है, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। कळायण में प्रकृति-चित्रण के माध्यम से ग्रामीण जनता की जीवन गाथा का वर्णन है। 'कळायण' वस्तुत ग्राम्य-प्रकृति का बारहमासा है।

भड़क भड़क भड़ना हुवे—भर भूवे भम्भूक।
धड़ धड़ धम्मलिया गिरै—पड़ पड़ पड़ना टूक।।
देख कळायण चमा प्रेम बरसावे पाणी।
बरसत बीती घो 'र' बपे ना भरण विसारणी।।
जिलमें बाबी बिलो पड़यो पाणी रो भर भर।
सीयल पळको बटी पाड़ सोवे रा घरवर।।

घर आया सेंवमण कीमी खूब रचायो खेल है ।
आज सुबाणी सांझ बणायी आपी बीजण खेल है ॥"

भी संस्कर्ता का 'वसदेव' भी प्रकृति-काव्य का सुन्दर उदाहरण है। इसमें नीम केवड़ो फोग अरड़सो, और आम-नीम बमदेव तथा झूमो जांडो धोरा झाड़ो और बाण-नीम भूमिदेव-दस देवा की स्तुति है।

'समय बायरो' संस्कर्ता की एक अन्य रचना है।

गजानन वर्मा और कल्याणसिंह राजावत के लोक-वातावरण से संपृक्त मधुर गीतों में प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है। उनके ध्वनि-गीतों में प्रकृति की ध्वन्यात्मक झङ्कार गूंजती है। सर्वश्री मेघराज 'मुकुल' मनोहर शर्मा गिरिराज भँवर, सत्यप्रकाश जोशी गणेशीलाल व्यास मनोहर प्रभाकर, कमलाकर, लक्ष्मणसिंह रसवन्त चन्द्रकुमार सुकुमार' नारायणदत्त श्रीमाली भीम पंड्या और किशोरकल्पना कांत की कई कविताएं प्रकृति-चित्रण के सुन्दर उदाहरण हैं—

१ आंगण में जो जुगै चिड़कल्यां चिबारैड़ी मोठा री बाल ।
छोटी मणक भू मरो कांई सुल सुल साफ करे है ठाण ॥
(गजानन वर्मा)।

२ 'झूम झूम बादरियो गावे बादल घिर घिर आवै ।
आभै में सुख छिप पलकाकर, बीजलियां बिलमावे ॥
हियड़े हूक उठे धरती रे आंसुड़ा ढलकावे ।
यो बिन धरती झुरे साजना बलता हियड़ा तारे है—
धरती हेलो मारे है।
(नारायणदत्त श्रीमाली)।

३ नाचो नाचो मन बजाओ ऊंची राखो में बासा बागां में,
फूलां री रस पावणी—बसन्त ऋतु आई रे ।
(रामनाथ 'कमलाकर')।

४ बादल रे उठते जोबन सें-बिजली री आंख्यां लड़ जावे ।
अम्बर रा एक इसारा पर, धरती लजवाणी पड़ जावै ॥
कण-कण री जद निरख जावै उन्माद जगातो हियड़ा में ।
ऊँचे चौबारे बिरहण री आंख्यां अम्बर में गड़ जावै ॥
घिर-घिर मेघा री है रिमझिम ।
मिट मिट कर उमरा सरगम ॥ (गिरिराज भँवर)।

उपन्यास

५ 'पूनम री रात सुहावणी है पुलकित धिरती रो आंगणो है।
माथै में रमतो चांदड़लो म्हारा हिवड़ा नै हरखावै।
(मनोहर प्रभाकर)।

६ ऐ आवै है ऊगूणी में परभाती धारा पावसियां।
रथ कूंणियै रथ पर बैठा है राधा में मार रिझावसियो ।।
(लक्ष्मणसिंह रसवन्त)।

७ 'सणिया तोड़ बैवड़ो आटपो-ऊभो हीरो चाल्यो
हीरै के साथै यो हिरदो-ऊँचो ऊँचो चाल्यो ।।
(मनोहर शर्मा)।

८ 'मोरां में रमता निरख्या म्हैं
सोने सी धोरी बालू पर मोती सा चड़िया निरख्या म्हैं ।।
(कल्याणसिंह राजावत)

गीत-कथायें

राजस्थानी में ऐतिहासिक तथ्यों और किंवदंतियों पर आधारित कई गीत-कथाएँ लिखी गई हैं। इस संदर्भ में सर्वश्री मेघराज 'मुकुल' मनोहर शर्मा, सत्यप्रकाश जोशी और कन्हैयालाल सेठिया के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री गणेशीलाल व्यास ने कई श्रेष्ठ संगीत रूपक लिखे हैं जिनकी कथा वस्तु और प्रेरणा ग्रामीण-जीवन को छूती है।

श्री 'मुकुल' की सैनाणी और 'कोडमदे' पद्य-कथाओं में आश्चर्य और प्रेम-मार्ग में आत्मोत्सर्ग के चित्र हैं। सैनाणी का ऐतिहासिक कथानक जिसमें रणक्षेत्र में जानेवाले प्रियतम को हाड़ी रानी द्वारा कटे हुये मस्तक की निशानी देने का वर्णन है राजपूत नारी के आत्म धर्म-पालन का उत्कृष्ट और अमर उदाहरण है। वीरभूमि राजस्थान में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत में यह कविता काफ़ी लोकप्रिय हुई है।

राजस्थानी गद्य और पद्य के क्षेत्र में साहित्य की शायद ही कोई ऐसी विधा छूटी हो जिसमें विशारद के मनोहर शर्मा ने सृजन न किया हो। 'गीत-कथा' नाम से उनकी गीत-कथाओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'मरवण' उनका एक प्रेमाख्यानक काव्य है जिसमें मरवण और मालवणी को आध्यात्मिक प्रतीक माना है।

श्री कन्हैयालाल सेठिया की 'पातल-पीथल' लोक-प्रिय कविता है जो गीत कथा का एक सुन्दर उदाहरण है—

'म्हे आज सुणी है व का कदम अब रांड हुवैला रजपूती।
म्हैं आज सुणी है म्यानां में तरवार रेवैला अब सूती॥
मां हाथां में तलवार थकां कुण रांड कवै है रजपूती।
म्यानां रै बदले वैर्यां रै, सीनां में रेवैला सूती॥

(पातल-पीथल)

शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश' ने हाड़ौती क्षेत्र की एक लोक-कथा के आधार पर 'सावणी-तीज' गीत कथा की रचना की है। गुर्जर-परिवार का एक नव-विवाहित नवयुवक चम्बल की बाढ़ को पार करके भी अपनी प्रियतमा पत्नी से मिलने को आतुर है। वह इसी प्रयास में बाढ़ की उफनती धारा के

इस्यादन

साथ वह निकलता है। पत्नी भी उसकी सहायता को दौड़ती है। अंततः शादी के बाद उनका प्रथम और अन्तिम मिलन धम्मास की धारा में ही होता है और वे बह निकलते हैं।

इस दुखान्त गीत-कथा का एक प्रसंग प्रस्तुत है—

'अब हार मान बोल्यो प्रीतम—अब म्हारा बस की बात नहीं।
राणी म्हाकी तकदीरां में या थाव मिलण की रात नहीं॥
सावणी तीज ई धरती पै री दुनियां खूब मनायी छा।
गाया छा मन भर गीत साथ छोरां सू ढोल बजाया छा।
धम्मास छोरी सु गरज्यां छा मत सुणजा दे म्हारी बातां।
दुनियां ने सौंपी कर चाली पै काली सावण की राता॥

श्री नानूराम संस्कर्ता ने भी कई पद्य-कथाएं लिखी हैं। श्री सत्यप्रकाश जोशी के 'सहकार' संग्रह में भी 'ऊजली' के सम्बन्ध की 'गीतकथा' है। हणूतसिंह की 'बेटे रो बलिदान' और कन्हीदान की 'बिदा' का उल्लेख भी आवश्यक है।

'तोरण पर पाबू बण बनड़ो सोहे हो पीठ कास भी री।
जब छवि लिखा कवि री पीड़ा उस बेळा री शोभा भी री॥
अम्बर में रंग उमंगो हो धूम पर एसाट रंग बरसे हो।
माणस उर तम्मी तार बजा कुण जाणे कितरो हरसे हो॥

(बिदा कन्हीदान)

श्री गणेशीलाल व्यास ने 'ओपेरा' व संगीत-रूपक की शैली पर कई लघु-नाटिकाएं लिखी हैं जिनमें कथा का भावात्मक प्रवाह रहता है। 'भोमरवां' और 'धरती-जागरण' इसी प्रकार के रूपक हैं जिनमें सरस और मौलिक काव्य लोक-संगीत से अनुप्राणित मौलिक धुनें और चेतना के स्वर एक साथ मिलते हैं। 'भोमरवां' का एक प्रसंग देखिये—

भरत—'धरतपुत्र नींद हराम मानणा।
क्यों पड़ग्यो है काम खेत में
कया जीवत्या जद हाल्यो साथी
कुण सूतो है नींद में ?

भुगावी—भवरानी रो भावुक डीलो
क्यों सूतो है नींद में

जागो मुजन जवान
सहेल्यां चूड़ बरपो धन धाम में।

श्री मनोहर प्रभाकर, विश्वनाथ शर्मा 'विमलेश' और रामनाथ व्यास 'परिकर' ने भी कई सङ्गीत रूपक लिखे हैं।

प्रबन्ध काव्य—खण्ड काव्य

श्री मनोहर शर्मा प्रबन्ध-काव्य से लेकर ललित गीतों तक, कल्पना की ऊँचाई और भावों की गहराई से लेकर बालोपयोगी साहित्य की सरसता और सरलता तक तथा मौलिक सृजन के साथ-साथ राजस्थानी साहित्य के अनुसन्धान शोध और पुनरुत्थान के दायित्व को बड़ी खूबी के साथ निभा रहे हैं। राजस्थानी भाषा और साहित्य की समस्याओं स्थितियों और सम्भावनाओं की जितनी अधिक जानकारी श्री शर्मा को है उतनी विरला को ही हो पाती है। 'वरदा' के सम्पादक श्री मनोहर शर्मा श्रेष्ठ-कवि के साथ-साथ शोध एवं अनुसन्धानकर्ता तथा श्रेष्ठ और सन्तुलित आलोचक भी हैं।

प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री मनोहर शर्मा ने अब तक १५ काव्य लिखे ६ काव्यों के अनुवाद किये और जन-काव्य-भाषा की पांच कितबें प्रस्तुत की हैं। काव्य के अतिरिक्त अन्य रचनाओं की चर्चा पृथक अध्याय में की जायगी।

श्री मनोहर शर्मा रचित काव्य-ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

१ अरावली की आत्मा २ गीतकण ३ धोरों का सङ्गीत ४ कूंजां ५ अमर-फल ६ गोपी-गीत ७ मरवण ८ पखी ९ बापू १० उछरई ११ गजमोती १२ वीर-गीत १३ बैल-बधे १४ अवला १५ म्हारो गांव आदि।

जनकाव्य भाषा के अन्तर्गत आपकी निम्न रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

१ गोपीचन्द २ भरथरी ३ पार्वती-मङ्गल ४ रूमावे ५. तावांरे।

राजस्थानी काव्य-भण्डार में 'कूंजां' 'अमर-फल' गोपी-गीत' और 'बापू' आदि काव्यों की बड़ी प्रतिष्ठा है।

'बापू' खण्ड-काव्य में मानवतावाद का स्वर सर्वोपरि है। इसमें युगावतार गांधी के जीवन की झांकी प्रस्तुत की गई है।

'अमरफल' कठोपनिषद् की आध्यात्मिक छाया में पोषित प्रबन्ध-काव्य है जिसे ४ सर्गों और कुल २१६ छन्दों में सँवारा गया है। साधक मार्ग की विकार रूपी बाधाओं को पार करता है, फिर मृत्यु के रहस्य को देखता है।

श्री शर्मा ने यथार्थ जगत की अनुभूति में मृत्युलोक को चित्रित किया है। इतने क्लिष्ट और दुरूह विषय को सीधी सादी भाषा में प्रतीकों द्वारा समझाया गया है—

'रात दिवस का भेद भुलाकर—सदा खुला यह विकट कपाट।
पन्थ निराली जग माये जावे—पण सूनी आवे या बाट॥

'मरवण' ढोला मारू लोक कथानक पर आधारित प्रआख्यानक प्रबन्ध काव्य है। ढोला मरवण और मालवणी को क्रमशः जीव विद्या और अविद्या के प्रतीक मानकर उन्हें आध्यात्मिक रूप दिया गया है—

'मालवणी ज्यूं प्रेम बादली उमड़ कबीर ज्यूं मोर।
ना बरसे मारवा री भूमी जो नाचे रस मोर॥
पी-पी तान सुणावे—
हिरदे की वीणा बाजे एकसी-रसतार कंपावे॥

'ममता' नारी-जीवन की समस्याओं का सहानुभूति-पूर्ण चित्रण है जिसमें सीता शकुन्तला द्रौपदी यशोधरा आदि आदर्श नारियों के प्रसङ्ग हैं।

'पंछी' भी शर्मा का एक अन्य काव्य है जिसे भी प्रबन्ध काव्य की संज्ञा दी गई है। 'मरुधरा की आत्मा' में दुर्गादास मीरा चन्द आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवन-घटनाओं का चित्रण है जो वस्तुतः प्रशस्ति काव्य है। 'रसधारा' ७५ छन्दों का काव्य है। डूंगरोद स्कूल की वार्षिक पत्रिका में 'म्हारो-गाम' शीर्षक से शर्मा की एक और बालोपयोगी विस्तृत कविता प्रकाश में आई है।

'रामदूत' लाडनूं के श्री श्रीमन्तकुमार व्यास का १४ सर्गों का प्रबन्ध काव्य है जिसे वस्तुतः खण्ड-काव्य ही कहना अधिक उपयुक्त होगा। काव्य का उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध से अधिक पुष्ट है। इसमें रामभक्त हनुमान की कथा है। समीक्षकों के अनुसार 'रामदूत' राजस्थानी काव्य की प्रौढ़ कृति है जिसमें मरुभाषा का ओज निखरा है। वर्णन कहीं-कहीं सुन्दर और चित्रोपम है। काव्य की भाषा प्रचलित जोधपुरी है जो प्रवाहमयी और प्रसादपूर्ण युक्त है।

चल्यो पवन की चाल लाय हनुमान हठीलो।
श्याम समन्दर आकर लखकर अम्बर नीलो॥
काम-मगन है एक लगन है जिभ्या राम रटन्त।
हाय विधाता लखणाणा रो क्यूं कर कष्ट कटन्त॥

'ओ रावण में रमती कोनी मर जाई तूं बीरो' सीता के प्रति अविश्वास

का द्योतक होने से खटकता है। इसी प्रकार 'कोट ओट परकोट-खोट गी मीत न मने बसेली' देश-काल के विपरीत वक्तव्य है।

'सांझ' प्रकृति-काव्य के रचयिता श्री नारायणसिंह भाटी का 'दुर्गादास' परम्परा के काव्यों में आता है किन्तु दुर्गादास की शैली राजस्थानी को एक नई देन है। दुर्गादास के इतिहास प्रसिद्ध कथानक को मौलिक कल्पना में संवारा गया है। दुर्गादास में छन्दों का मौलिक प्रयोग भाषा का प्रवाह तथा अनुभूति की गरिमा है। सम्पूर्ण काव्य मुक्तक-छन्द में रचा गया है जो राजस्थानी में नया प्रयोग है—

आई कद
प्राची रे पथ रही
उठ्यो धरक धोक खोली
सिखर सोहत कैलाश कंगोती बीच सू किरण
काले वदक

" भाखा सै भाल पलकी।

श्री चन्द्रसिंह के 'लू' और बादली तथा श्री भाटी का 'सांझ' उत्कृष्ट कोटि के प्रकृति-काव्य हैं जिनकी चर्चा प्रथम से की जा चुकी है।

श्री मनोहर शर्मा का 'कुंजां' और सुबोधकुमार अग्रवाल का 'मोर' गीति-काव्य हैं।

ठाकुर रणवीरसिंह रचित 'प्रताप प्रशस्ति' को राजस्थान-साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया है। इसमें मेवाड़ के गौरव हिन्दुओं के सूर्य-महाराणा प्रताप की यश-गाथा है।

'अकबर तुरक उधार कर राखी रघुकुल रीत।
रंग प्रताप महाराज मैं-देस-धरम-कुल प्रीत॥
संकट घन संकट सहा धारण कर मन धीर।
मान बान राखी अटल, रंग प्रताप 'रणवीर'।'

'धरती री पीर' श्री किशोर कल्पनाकांत का अप्रकाशित खण्ड-काव्य है जो जगज्जननी सीता के जीवन पर आधारित है।

सूर्यमल्ल एवं वीर सतसई के संपादक श्री मतराम गौड़ राजस्थानी के अच्छे कवि हैं। 'रैगिस्तान' श्री गौड़ का एक सरस खण्ड-काव्य है जिसमें राजस्थान की धरती के प्रति गहरी आत्मीयता के दर्शन होते हैं।

'दसदेव' श्री नागूराम संस्कर्ता का छप्पय शैली पर लिखा गया काव्य है, जिसमें मरु-प्रकृति का वर्णन है। 'बटोही' उनका कथा-काव्य है।

श्री दौलतसिंह लोढा 'अरविन्द' रचित 'मेवाड़ मां' मेवाड़ के गौरव की गाथा है। भाषा में सरलता व स्वाभाविकता है। प्रकृति और जन-जागरण के प्रसंग अधिक सजीव हैं। 'मेवाड़ मां' धरती-पुत्रों के त्याग और बलिदान की गाथा है।

मनोहर शर्मा 'मञ्जुल' की 'राजस्थानी गुंज' में शूरवीरता और वैभव सतीत्व-महिमा पारिवारिक एकता भारतीयता और अध्यात्मप्रियता की चर्चा है। नीति-साहित्य की इस पुस्तक में २११ सोरठे हैं।

'सोचे बिना विचार, जीवन एलो जावसी।
सोध्यां पावे सार, अमर कीर्ति ए मञ्जुला॥'

'जागती जोतां' श्री गिरधारीसिंह पड़िहार की पहली प्रकाशित रचना है जिसमें मेघनाद शिशुपाल पुरु पाबूजी पातल अमरसिंह झुंझार जी और दादू आदि नायकों की जीवन-घटनाओं के माध्यम से उत्साहवर्धक काव्य रचा गया है।

"कर लेय सारो जगत वैर, जो जायो गर्व बच्यो कोनी।
भारत में मुगलम सूं लोहो मांड जो लाज बच्यो कोनी॥
या बात खरी है, कदी लोग मरणें स्यूं राव डरें कोनी।
मुक्त ल्याळो थारे चरणां पर, ता के में कढे सक कोनी?
मरणो तो अटल जीव रो है, इण धरा नें कोई जावे है।
करमां री खेती निपजे है इतिहास बोलतो जावे है॥'

(जागती जोतां)

आधुनिक राजस्थानी काव्य की चुनी हुई पुस्तकों का उल्लेख यहाँ किया गया है—

'लू'-बादळी और कहकुकरणी (चन्द्रसिंह) कल्याण-समय बायरो और दसदेव (नागूराम संस्कर्ता) कूंजां-अमरफल-मरवण व गोपीगीत आदि (मनोहर शर्मा) सांझ और धुर्मांवास (नारायणसिंह भाटी) झूमको (मावन शर्मा) रामदूत (श्रीमंत कुमार व्यास) मनभारती (मोतीलाल चतुर्वेदी) सतवन्ताणी (विमलेश) महादेई महिमा (हिमताबराम) नवी धरणी (सुमनेश जोशी) मूंगामोती (सोमराज मंगल) सरवर रा सोरठा (सरवर) नवीनगीत (पुरुषोत्तम मेनारिया) पत्र प्रभाकर (पृथ्वीराजव्यास)

प्रताप रा रंग रा दूहा (बसवंतसिंह) रमणिये रा सोरठा (निर्मल), शृंगार-सती शतक कालिये रा सोरठा और मासा शतक (उदयराज उज्ज्वल) मोरयाँ री कंठी (खिमचन्द भरतिया) धरती रा गीत (निरंजननाथ आचार्य) चतुर चिंतामणि महिम्न स्तोत्र और चन्द्रशेखर स्तोत्र (चतुरसिंह), रसिक-विनोद (सज्जनसिंह) गुणवन्त (कान्ह महर्षि) फेर काई चाबणा (रघुनाथसिंह) हाथ सूं करर सीनो बारलो (भीम पण्ड्या) कन्ट्रोल रो जमानो होली रा हौको और गोरी रो घोटालो (श्रीमूलाल सोढा) मजब रो घोटालो (मस्त योगी) मेवाड़ माँ (दौलतसिंह-लोढा) व्यास जी रो भूलो (सोमदीलाल) गीत पच्चीसी (हीरालाल शास्त्री) कामण भूम पुण दिया (तेजाराम) होली रो फुलकणियो (पुष्पपुरी गोस्वामी) रामदेव प्रकाश (पुरोहित रामसिंह) रामदेव लीलामृत (लक्ष्मीदत्त बारहठ) चोखा गीत (दोलाराम हीरावत) राजस्थानी होली संगीत (किंकर कवि) केहरि प्रकाश (कवि बख्तावरजी) कालिया शतक (सुमनसिंह) महाभारत को दी मरोड़ और मकल बड़ी के मस (श्री नारायण अग्रवाल) और राजस्थानी दूध (मनोहर शर्मा मधुप')।[1]

दूहा–साहित्य

दूहा शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। दूहा अपभ्रंश का अत्यन्त ही लाड़ला छन्द है। डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार दोहा ही वह पहला छन्द है जिसमें तुक मिलाने का सर्व प्रथम प्रयोग हुआ।

कुछ विद्वानों के मतानुसार कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' का निम्नलिखित दोहा इस छन्द का प्राचीनतम उदाहरण है—

"मइ जाणिअं मिअलोअणी–णिसिअर कोई हरेइ।
जाव णु णव तडि सामल धाराहरु वरिसेइ ॥

मैंने समझा था कि मृग के समान नेत्र वाली मेरी उर्वशी को कोई राक्षस हर कर ले जा रहा है पर यहाँ केवल नव तड़ित् से युक्त कोई काला बादल पानी बरसा रहा है।[2]

नाटक के इस अपभ्रंश भाग को कुछ विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं अतः यह कालिदास की ही रचना है इसमें सन्देह है। पर यह दोहा ७ वीं–८ वीं सदी

---

१ मरुवाणी मासिक से साभार।
२ शोध पत्रिका वर्ष ११ अङ्क १ का सम्पादकीय।

मर ाबम

का प्रचलन माना जाता है अतः दूहा छन्द का प्रयोग तत्कालीन समय तक तो मिलता ही है।

गुजराती के विद्वान् श्री केसवराम काशीरामजी ६ वीं शताब्दी से मात्रा छन्द के साथ-साथ दोहे मात्रिक छन्द का प्रयोग शुरू होना मानते हैं।

अपभ्रंश से आगे इस दूहे को जिसे हिन्दी में दोहा कहा जाता है प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी ने (जिसमें जूनी गुजराती प्राचीन राजस्थानी और प्राचीन हिन्दी आती है) पाल-पोस कर बड़ा किया।

दोहे का सर्वाधिक संस्कार राजस्थानी कवियों की वाणी से हुआ। ख्यात वचनिका प्रहेलिका लोकोक्ति खण्ड-काव्य प्रबन्ध-काव्य मुक्तक—सभी में इस छन्द का प्रयोग हुआ है। राजस्थानी वीर-काव्य का विपुल दोहा-साहित्य इस बात का प्रमाण है कि वीर-पुरुषों में अपने कर्तव्य और स्वाभिमान के लिये मर मिटने की प्रेरणा भरनेवाला काव्य, बहुत कुछ दूहों में ही लिखा गया है।

'राठौड़ रतनसिंहजी री वचनिका' में यह जानकारी मिलती है कि १८ वीं शताब्दी में दूहा काव्य अत्यधिक लोकप्रिय था। उस समय के कुछ प्रमुख दूहों की नामावलि प्रस्तुत है।[1]

१ परिजाऊ दूहा २ वेमड़े वांक बगस रा दूहा ३ एकलसिंह बाराह रा दूहा ४ मुंज मारवणी रा दूहा ५ राचरिणमल रा दूहा ६ राव ऊमर रा दूहा ७ करण रामौत रा दूहा ८ जैतसी भूणा रा दूहा ९ बीसल पत्ता रा दूहा १० बीपा भूम्पा रा दूहा ११ प्रिथीराज बीतावत रा दूहा १२ ईसर बीबायत रा दूहा—आदि-आदि।

राजस्थानी काव्य में दूहे के कई रूप मिलते हैं, यथा —

१ सुद्ध दूहो २ सोरठियो दूहो ३ बड़ो दूहो ४ तुम्बेरी दूहो ५. खोड़ो दूहो।

हिन्दी में दोहा छन्द का एक ही रूप है जिसके पहले और तीसरे चरण में १३ १३ तथा दूसरे और चौथे चरणों में ११ ११ मात्राएं होती हैं। राजस्थानी और गुजराती में उसके चार भेद हैं।[2] पहला रूप हिन्दी के दोहे के समान है दूसरा हिन्दी के सोरठे के समान जिसे सोरठा कहा जाता है। तीसरे भेद में प्रथम और चतुर्थ चरणों में ११ ११ मात्राएँ तथा द्वितीय और तृतीय चरणों

---

१ सम्पादक काशीराम शर्मा व डा. रघुवीरसिंह।

२ साहित्य सन्देश (अगस्त १९५४) राजस्थानी भाषा और साहित्य की शैली (श्री कुमारसिंह)।

में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। चौथा भेद इसका उलटा होता है। अर्थात् प्रथम और चतुर्थ चरणों में ११ ११ तथा द्वितीय और तृतीय चरणों में ११ ११ मात्राएँ होती हैं। कुछ चारों में ११ ११ मात्राओं वाले चरणों को मिलाया जाता है।

राजस्थानी साहित्य के आरम्भ-काल और मध्य-काल में रचित दूहों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

आरम्भकाल—

१ जलपल भरिया मग्गड़ा अपरिख जलकह मेहु।
हत्थवहरि करि माणिणिए, हव आरिख सिराम्मेहु॥
२ पहले पीछे ल्याह, करडावण से जोर करै।
भीरा में भलताह, भांधू भावै ईसिया॥

मध्यकाल—

१ पटकूं मूछां पाण, के पटकूं निज तन करद।
दीजै सिर दीवाण, इण दो महली बात इक॥
२ मोतीं मारुया भाव भी मेहूं भावे घणा।
मरड़ा तो उमराव रोसो मूंगा राविया॥

आधुनिक राजस्थानी-काव्यों में भी दूहे का बड़ा महत्व है। कहा जा सकता है कि परम्परा की इस विरासत को जाब राजस्थानी-साहित्य जितना सम्भाले हुए है उतना हिन्दी नहीं। नये कवियों ने दूहा छन्द के सीमित कलेवर में भी अपनी नई अभिव्यक्ति को बांधा है। बहुत सम्भव है कि राजस्थानी कवियों को अपनी रचना-प्रक्रिया और उसकी प्रगति में भी दूहा बनाने से ही सबसे अधिक सहायता मिलती रही हो।

श्री मनोहर शर्मा का 'अरावली की आत्मा', 'राजस्थानी महावीर वाणी' 'राजस्थानी बुद्ध-वाणी' और 'राजस्थानी कृष्ण गीता' दूहा छन्द में ही लिखी गई हैं।

सतसई परम्परा पूर्णतः दूहा काव्य है। सूर्यमल्ल और नाथूदान महियारिया की 'वीर सतसई' रावत नरेन्द्रसिंह की 'वीरपूजा सतसई' तथा कई अन्य अपूर्ण सतसई काव्यों में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। कविराजा बांकीदास के कई अन्य दूहा ग्रन्थ भी हैं। उदयराज उज्ज्वल की 'दूहशार शतक' ठाकुर कुमानसिंह का 'कालिया शतक', मोतीलाल चतुर्वेदी का 'मधमाली', चन्द्रसिंह के 'लू और बादली', मोमराज मंगल का 'मूं घा मोती'

चन्द्रशेखर व्यास का 'सरवर रा सोरठा' मनोहर शर्मा 'मधुप' का 'राजस्थानी गूंज' दूहा-काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

सर्वश्री दुर्गासिंह, शक्तिप्रसाद आचार्य, भरत व्यास, मातादीन भगेरिया, सौभाग्यसिंह शेखावत, मुरलीधर व्यास, केसरीसिंह, राजलक्ष्मी देवी 'साधना' और वीरसिंह ने भी दूहा-काव्य रचकर आधुनिक राजस्थानी-साहित्य में दूहा-काव्य की अभिवृद्धि की है।

आधुनिक काल के कुछ दूहे प्रस्तुत हैं—

१ जिण बन भूल न जावता गैंद गवय गिड़राज ।
तिण बन जंबुक ताखड़ा ऊधम मंडै आज ।

(महाकवि सूर्यमल्ल)

२ सोरठिया दूहा

'भारत देस मुकुट नेहरू की पूनी मर्द ।
देशनाम सरवस माटी नाम्यो मानिया ॥'

(उदयराज उज्ज्वल)

३ 'वे करसी विणजी दुखी मासी विरध गुणीह ।
ये मढ़े किणरा बापरो भगती रजपूतीह ॥

(नाथूदान महियारिया)

४ 'सूरज मुकटो माथियो आभो आंबर गैंद ।
बध बरण मन मार बम बैठयो पाट बसंत ॥ (चन्द्रसिंह)

५ 'कुम्भीपाक फफूरिया पटपड़िया पीर ।
इसका धनपत्ता भरी कण देवै गम्भीर ॥

(मुरलीधर व्यास)

६ 'सुरवर मद्धम न मानिया लीधा यही गुणगान ।
सरब परम पाणी पवन फोग यही जग धाम ॥

(सौभाग्यसिंह शेखावत)

७ 'मुख मोड्यो नहँ काम में कीन्हो कुल नहँ कम्प ।
मरण करण पत्ती मरद आप रह्यो नित अम्प ॥

(रणवीरसिंह)

८ 'सूरा थाई जाणता ऊभा बीती मौत ।
वै दिन सुरभर राखतो तरवारां री जोत ॥

(गणपति स्वामी)

९ 'बसुधा पूछ अरोड़बे जीभ्यां टिचकारयांह ।
नाभज भिणगारयां सबै चारण रे बयणांह ॥

(पतराम गौड़)

१० 'चाल्यो चढ़ चहुवाण पाल्यो पण प्रथिराज पण ।
हाल्यो मत हिंदवाण, चाल्यो कमधज जाय भिर ॥

(राजस नरेन्द्रसिंह)

सोढ़ो दूहो —

११ 'पोढ़ा धूधर रोम सुणी पती रा सुन्दरी ।
ढोल कमाड़ी पोम के चा हँसी ॥

(सांवलदान आशिया)

कहमुकरणी-पेरोडी-अरथ सिलोका

कहमुकरणी साहित्य का एक विशिष्ट रूप है । संस्कृति के साहित्यकारों ने उसे अपन्हुति अलंकार के अधीन लिया है । हिन्दी कवियों में खड़ी बोली के प्रथम कवि 'अमीर खुसरो' ने बहुत सी कहमुकरणियां लिखी हैं । कहमुकरणी में श्लेषार्थक परिभाषाएं होती हैं और छन्द की अन्तिम पंक्ति में उसके दोनों अर्थ स्पष्ट हो जाते हैं ।

राजस्थानी के समर्थ कवि श्री चन्द्रसिंह ने कई कहमुकरणियां लिखकर अमीर खुसरो' की विरासत को प्रतिष्ठा दी है । खुसरो के बाद चन्द्रसिंह ही पहले कवि हैं जिन्होंने काफ़ी अधिक और श्रेष्ठ कहमुकरणियां लिखी हैं । श्री चन्द्रसिंह का एक उदाहरण देखिये—

आण अचाणी जो घड़ आवै
सारी रात जीव भरमावै
पो फाटयां जद छूटे फन्द
क्यूं सखि साजन ? ना सखि चंद ।

श्री मोहनलाल पुरोहित द्वारा रचित कुछ कहमुकरणियां भी मिली हैं, यथा —

हाट बाट घर राज दुवारे,
आदर पावै कारज सारे
कदी कष्ट नहिं मैणा खोट
क्यूं सखि साजन ? ना सखि नोट ॥

राजस्थानी-साहित्य में पैरोडियां भी लिखी गई हैं । श्री मुरलीधर व्यास

पैरोडी लिखने में सिद्धहस्त हैं। वे इसे 'चोंच' नाम से पुकारते हैं। श्री व्यास की एक पैरोडी प्रस्तुत है—

मूढ़ रोग-बस जड़ धन हीना-अंध बधिर क्रोधी अतिदीना।
ऐसे हूं पति कर किय अपमाना नारि बनावत नरहिं मसाना ॥

'साहब तुम ही स्याम हो तुम लगि मेरी दौड़ ।
जूता मारो हूं भगूं दफ्तर में दो ठौड़ ॥

श्री बद्रीप्रसाद साकरिया द्वारा रचित पैरोडियाँ भी देखने को मिली हैं, उदाहरण प्रस्तुत है—

'एक घड़ी आधी घड़ी आधी सूं पुनि आध ।
चाह डोकर्यां चन चुगे कटे कोटि अपराध ॥
राम भजाया तो भज्या डलकर भज्या न कोय ।
डलकर तो काना भजी, राम भजन में होय ॥

अरथ सिलोका अर्थात् अधूरा-पूरा। इस प्रयोग का मूलाधार एक कहावत होती है। कहावत को चरितार्थ करनेवाले प्रसङ्ग की कल्पना करके उसके स्पष्टीकरण के लिये पद्य की रचना की जाती है और अन्त में वह कहावत दे दी जाती है। श्री मनोहर शर्मा द्वारा 'अरथ सिलोका' के सम्भवतः दो दर्जन वरदा के अङ्कों में प्रकाशित किये गये हैं—

'एक बीनूं नाम छै बीको राजू नाइ कहावै बीको ।
उतारी उठके नू ठे गाम जोशी चिड़ी-कपूरी नाम ॥
एक दिन माह मूं काढ्यो राजू नाइ बनायो बाखो ।
वे ले कुलड़ा उलट्यो गाम जोशी चिड़ी कपूरी नाम ॥"

काव्यानुवाद

उत्कृष्ट रचनाओं के काव्यानुवाद भी आधुनिक राजस्थानी-काव्य में मिलते हैं। श्रीमद् भागवत् गीता, महाकवि कालिदास के मेघदूत व रघुवंश उमर खैयाम की रुबाइयाँ रवीन्द्र की गीतांजलि दुर्गासप्तशती हाल की गाथा-सप्तशती और भर्तृहरि के तीनों शतकों के राजस्थानी काव्यानुवादों ने राजस्थानी के पाठकों के लिये विश्व-साहित्य का नवनीत प्रस्तुत किया है और जिससे राजस्थानी भाषा की सामर्थ्य का भी परिचय मिलता है।

प्रारम्भिक स्थिति में गीता के अनुवादों की परम्परा मिलती है, जिसमें स्व० श्रीरामकर्ण आसोपा और महाराणा चतुरसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मासोपाधी ने गद्य में और महाराज चतुरसिंह ने पद्य में गीता का अनुवाद किया।

राजस्थानी में सर्वाधिक अनुवाद श्रीमद् भागवद्गीता के ही [illegible] हैं। झुंझुनू के श्री विश्वनाथ शर्मा 'विमलेश' ने भी गीता का राजस्थानी पद्यानुवाद हाल ही में प्रस्तुत किया है। जिसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

धरती, पाणी सुख-दुख देवाला इन्द्रयाँ विसयाँ रो जोग।
छिण में ही मिटवाला अर्जुन थानें सेले मत कर सोग।
अर्जुन जोही धीरज हासो जो दुख सुख में रिये समान।
जीमे विसे सतावे कोनी वोही पावे मोक्स महान्॥

श्री नारायणसिंह भाटी मनोहर शर्मा मनोहर प्रभाकर और भोमीलाल चतुर्वेदी ने 'मेघदूत' के अनुवाद किये हैं। अनुवादित पद्यांशों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१ "बीजल जम कामणी झमकै इन्द्रधनस सा चित्र सुरङ्ग।
माल जम गूंजै मनभावा गान हेत गम्भीर मृदङ्ग॥
निरमल नीर सरीसी आभा, रतन जड़ी आंगण जाई।
तेरी होड करै वै नाता ऊँचा म्हेल बामताई॥"
(मनोहर शर्मा)

२ "कामण ज्यूं दम-दम दमके है हिवड़े साथ करती काम।
मन्दिर गाज सूं मिरदङ्ग बाजै सुरधन सा साजे चितराम॥
अम्बर जस घा रतन आंगणा ऊँचे म्हेल छुवै आकास।
तोसूं होड़ लगावे पूरी अलका यो म्हारो विसवास॥
(मनोहर प्रभाकर)

३ 'धरणी धोवी सेज नींद सुख छोड़ता भेती।
मधु उडीको मित्र गुणती घण घणखेती॥
हरखी मोटे मोद बापड़ी अंग भरती।
बिलखावै मत मेघ सपना सेण मिलती॥"
(नारायणसिंह भाटी)

श्री मनोहर शर्मा और अमर देपावत ने उमर खैयाम की विश्व प्रसिद्ध रुबाइयों के अनुवाद किये हैं। श्री कृष्णगोपाल कल्ला ने कालिदास के ऋतुसंहार का अनुवाद किया है। श्री अमरसिंह ने हाल की 'गाथा सप्तशती' और कालिदास के 'रघुवंश' का अनुवाद किया है। धनिदान कविया ने 'दुर्गा सप्तशती' का और भीखराम ने 'चतु श्लोकी' के अनुवाद किये हैं।

रामनाथ व्यास 'परिकर' और नारायणदत्त श्रीमाली ने रवीन्द्र की गीताञ्जलि के गीतों का राजस्थानी अनुवाद किया है। श्री रामनाथ व्यास 'परिकर' के अनुवाद का उदाहरण देखिये—

हूं चावूं—तम्नै चावूं तम्नेइ हूं चावूं। म्हारो मन सदा आइ बात गुणतो रैवै। रात दिन बकी वासनावां रै चक्कर में डोलतो फिरूं वै मिथ्या है—घणी मिथ्या अरे हूं तो तम्नेइ चावूं।

जिया रात आप रै अन्तस में आमरी री कोमली ने लुकायां राखे विगाड़ और मोमायां रे मांय हूं तो तम्नेइ चावूं। जिया आंधी शान्ती ने मन कर मार्ड तो इ आपरे जीव में शान्ती चावै विगाड़ म्हारो जीव पुकारया इ हूं तम्नै चावूं।

श्री दसिस्ताल कविया ने पश्चिमी जगत के प्रसिद्ध कवि 'टामस ग्रे की एलेजी' का अनुवाद किया है जिसका उदाहरण देखिये

मूल—On some fond-breast the parting soul relies,
Some Pions drops the closing eye requires
Even from the tomb the voice of nature cries,
Even in our ashes live their wanted fire.

अनुवाद—अन्त समै में जीव मोह सिगरा री चावै।
मीच्या नैणां मांय प्रेम रा आंसू चावै॥
समसाणां में घूप प्रकृति साद पुकारै।
राखै मांमी आस अखांला रै चीता रै॥

गीलाल नथमल जोशी ने 'गृसिंह सिरिस्तोग' और टेनीसन की प्रसिद्ध कविता 'ईनक आरडन' के राजस्थानी काव्यानुवाद किये हैं।

श्री मनोहर प्रभाकर ने भर्तृहरि के तीनों शतक—'शृंगार-शतक' नीतिशतक' और 'वैराग्य-शतक' के राजस्थानी पद्यानुवाद किये हैं।

श्री मनोहर शर्मा की निम्न पुस्तकें अनुवादित काव्य की ही श्रेणी में आती हैं—

१ राजस्थानी महावीर-वाणी २ राजस्थानी बुद्ध-वाणी ३ राजस्थानी श्रीकृष्ण-गीता ४ राजस्थानी अन्योक्ति-शतक।

श्री मोहनलाल शर्मा 'मगरू' ने भी गीता का राजस्थानी अनुवाद किया है। प्रसङ्गवश उल्लेखनीय है कि प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने श्री झवेरचन्द मेघाणी की कई गुजराती रचनाओं का और किशोरकल्पना कांत ने 'एन्टन चेखव' की कहानी (अन्धारे) का अनुवाद किया है।

श्री कृष्णगोपाल कल्ला ने कालिदास के ऋतुसंहार का राजस्थानी पद्यानुवाद किया है, जिसका उदाहरण प्रस्तुत है—

"मीठी मांमळ रात चंदरमा तणी च्यानणी ।
हाथर छीपर बिकसी कुम्प फुहार बावळी ।।
मोती मुक्ताहार, मणी ठाकोल मावती ।
चमक चरखा रुण रुण मिमकी मना मावती ।।"

'राजमती काव्य' के एक अंश का राजस्थानी भाषांतर भी 'मरु-वाणी' देखने को मिला है। भाषांतरकार श्री दौलतसिंह लोढ़ा हैं उदाहरण प्रस्तुत

"बरण मह वारा मन सू छीजी छोड़ गयो बरण मह यूं मासी ।
हेसू-कमोड़ा मेल्हे था रे, केड़ी मत उपजी कुमद्माली ।।
कब बेलड़ी फूल्योड़ा रे, फूल मबोड़ा मुरझोड़ा रे ।
मधुरामा फल मुरझोड़ा रे, मुकियोड़ी रे डाली डाली ।।'

गद्य—साहित्य

राजस्थानी का प्राचीन गद्य-साहित्य अत्यधिक विशाल और महत्वपूर्ण है। राजस्थानी में जितना प्राचीन गद्य-साहित्य मिलता है उतना भारत की किसी अन्य भाषा में मिलना कठिन है। विद्वानों की मान्यता है कि १४ वीं शताब्दी तक राजस्थानी गद्य प्राप्त होता है। मुद्रणालयों की कमी राजस्थानी के पाठकों का अभाव तथा प्रचार-प्रसार की अन्य सुविधाएँ न मिल पाने के कारण इस भाषा का अभी बहुत कम साहित्य प्रकाश में आ पाया है। राजस्थानी गद्य-साहित्य को ५ प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।[1]

१ धार्मिक गद्य-साहित्य (अ) जैन (ब) पौराणिक।
२ ऐतिहासिक गद्य-साहित्य (अ) जैन (ब) जैनेतर।
३ कथात्मक गद्य-साहित्य।
४ वैज्ञानिक गद्य-साहित्य।
५. प्रकीर्णक गद्य-साहित्य (अ) पत्रात्मक (ब) अभिलेखीय।

राजस्थानी साहित्य परम्परा को समझने के लिए सामान्यतः उसे तीन कालों में विभाजित किया जाता है—

१	प्राचीनकाल	सं० ११०० से सं० १५००
२	मध्यकाल	सं० १५०० से सं० १९००
३	आधुनिक-काल	सं० १९०० से आज तक।

डॉ॰ 'अचल' सं॰ १३०० से सं॰ १४०० तक को प्रयास काल और सं॰ १४०० से सं॰ १६०० तक को विकास काल मानते हैं। विकास काल राजस्थानी गद्य का स्वर्णकाल है। २०० वर्षों के इस समय में गद्य शैली के कई नये प्रयोग हुए, शब्द योजना की रूपरेखा बनी तत्पश्चात् भाषा ने गति पकड़ी। मौलिक ग्रन्थों के साथ व्याकरण ग्रन्थ भी लिखे गये। ऐतिहासिक गद्य भी सामने आया तथा भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित हुई।

विकास काल के उपरान्त गद्य-साहित्य शिथिल पड़ गया जिसका पुनरुत्थान आधुनिक-काल या नव-जागरण-काल में ही हुआ।

---

१ राजस्थानी गद्य-साहित्य का विकास—डॉ॰ शिवस्वरूप शर्मा 'अचल'।

हिन्दी के वीर-गाथा-काल में साहित्यिक क्रियाशीलता का केन्द्र प्रधानतः राजस्थान ही था। पद्य के साथ-साथ इस समय गद्य भी विपुल मात्रा में रचा गया, जो आज उपलब्ध नहीं है।

गत १२वीं, १३वीं और १४वीं शताब्दी में भी कई जैन साधुओं ने जैन धर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें से कुछ गद्य के हैं और अधिकांश पद्य के। पद्य रचनाएँ प्रायः मौखिक रहा करती थीं लेकिन गद्य रचनाएँ लिखित हैं, जिनके उदाहरण आज भी देखने को मिल जाते हैं। इनकी भाषा पर अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव है, जिनमें हमें निश्चित रूप से राजस्थानी के प्राचीन गद्य का नमूना मिलता है। इन तीन शताब्दियों में राजस्थानी गद्य का महत्वपूर्ण अङ्ग जैन धर्म सम्बन्धी रचनाएँ ही हैं।[1]

स्व० श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने ऐसे कई पट्टे-परवाने प्रकाशित करवाये हैं, जिनमें राजस्थानी के प्राचीनतम उपलब्ध गद्य के नमूने मिलते हैं।

१६वीं शताब्दी की 'अचल कुँवर की बात' १७वीं शताब्दी की 'राव रतन महेसदासोत री वचनिका' 'वेलिक्रिसन रुकमणी री टीका' और 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' तथा १८वीं शताब्दी की 'लीलावती भाषा' 'ढोला मारवणी री बात', 'बैताल पचीसी' 'राजा रिसालू री बात' 'बीजा सोरठ री बात', तथा 'अचलसिंह खींची री बात' आदि तत्कालीन प्रतिनिधि राजस्थानी गद्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।[2]

डा० टंडन ने 'रघुवर जस प्रकास' और 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' में भी कहीं-कहीं तत्कालीन राजस्थानी गद्य के नमूने प्राप्त होने की चर्चा की है।

हिन्दुस्तान (भाग १ अङ्क १) में उन्नीसवीं शताब्दी के गद्य के दो नमूने प्राप्त होते हैं—

१ 'जिण विगतमें दराजी पढ़े सो विगत इतिहास कहावे। जिण विगतमें कम दराजी सो बात कहावे। इतिहास रो अवयव प्रसङ्ग कहावे। जिण बात में एक प्रसङ्ग हो चमत्कारिक होय तिका बात दास्तान कहावे।

(सन् १८०१ के लगभग)

२ 'सं० १८८५ वैसाख सुद ५ श्री महाराज रतनसिंहजी तखत बिराजिया करण महोल में। सु पहला तो गांव संवसर रे भोवारी तिलक किया श्री हजूर रै। जा पीछे महाराज रा ठाकरां वैरीसालजी सेरसिंघोत हजूर रै तिलक किया। पीछै रावतसर रा ठाकरां महासिंहजी तिलक कियो। (सन् १८११)

---

१ हिन्दी साहित्य कुछ विचार—डॉ० प्रेमनारायण टंडन पृष्ठ २५७।
२ राजस्थानी गद्य—डॉ० प्रेमनारायण टंडन।

महाकवि सूर्यमल्ल के कई पत्रों से उनकी राजनीतिक चेतना और कर्तव्य परायणता का परिचय मिलता है साथ ही तत्कालीन भाषा और अभिव्यक्ति की भी जानकारी मिलती है। वीर सतसई के संपादकीय में ऐसे कई पत्रों का उल्लेख किया गया है—

१ 'श्रीर राज्य मे अठी की खबर के' जाण्या लिखी जो परमेसर की कृपा सो अठै तो चनचार ही छै। आसाढ़ में आंमां की फौज हजार बीस के आसरे आई छी सो पठाणों सो टलि गई सो मेवाड़ तक होई पाछी आतां आमां री छावणी लूटि साहाबाद की झाड़ी में घुसी छै। (सं० १९१४)

२ 'पारसा तथा पायफरा सों अंग्रेज को कांई कसूर पड़ियो पाणो सो भी साविक दस्तूर लिखावसी और रामसिंह के साथ पत्र गयो तीमें धर्म के निमित्त युयुत्सा को प्रश्न लिख्यो छै तीको भी प्रत्युत्तर लिखायो नहीं सो अब क्या-क्या की बड़ी-बड़ी तरह बीतती होय सो लिखावसी। (सं १९१५)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रच 'पञ्चाख्यान' नामक एक और ग्रन्थ का परिचय मिलता है। यह पञ्चतन्त्र का राजस्थानी गद्य में अनुवाद है—

एक गांव में राज मढ़वा लागो। कामण सिधाई। ब्याव बधाई। तर मढेरया ने तस लागी तर गांव का छोरां ने पूछो। अरे डावड़ा। पाणी री पुरव बताओ। तब छोरी कीयों। ऊ कूवा आवा रूख हेरे। तब मरदवयो कूवे गयो।

डा टक्कन के अनुसार आरम्भ में राजस्थानी का सम्बन्ध खड़ी बोली से अधिक था ब्रजभाषा से कम। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों ब्रजभाषा का क्षेत्र बढ़ता गया त्यों-त्यों उसका सम्बन्ध भी ब्रजभाषा से घनिष्ट होता गया। यहाँ तक कि रीति-युग में आते-आते राजस्थानी के क्रिया और सर्वनाम के अधिकांश रूप ब्रजभाषा के समान ही हो गये—परन्तु साथ-साथ कुछ ऐसे ग्रन्थ भी रचे गये जिनकी भाषा शुद्ध राजस्थानी है और जो भाषा शैली की दृष्टि से बहुत महत्व के हैं। आगे चलकर खड़ी बोली का विस्तार क्षेत्र बढ़ते चले जाने के कारण राजस्थानी भाषा का हिन्दी भाषी प्रान्तों में विशेष प्रचार न हो सका।

बीसवीं शताब्दी में कई वर्षों तक राजस्थानी में भी राजस्थानी गद्य नहीं लिखा गया काव्य रचनाओं की परम्परा रही अवश्य लेकिन वह भी क्षेत्रीय महत्व से आगे नहीं बढ़ सकी।

इस प्रकार ११वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से अपभ्रंश से पृथक् होकर, राजस्थानी ने एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में जो विकास पाया वह क्रमशः धीरे-धीरे प्रसार-क्षेत्र की चोटी से चोटी सीमाओं में भी बढ़ता चला गया।

अंग्रेजी और खड़ी बोली के विकास ने राजस्थानी-गद्य के विकास की धारा को कुण्ठित तो किया लेकिन यह प्रवाह पूर्णतः विलुप्त कभी नहीं हुआ और स्व० रामकर्ण आसोपा के समय से उसमें पुन नयी सामर्थ्य आने लगी। खड़ी बोली के विकास में जो स्थान महावीरप्रसाद द्विवेदी का है, राजस्थानी के विकास में श्री रामकर्ण आसोपा उसी श्रेय के अधिकारी हैं। राजस्थानी भाषा के विकास और उसकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए आसोपाजी की सेवाओं को कभी नहीं भुलाया जा सकता।

श्री शिवचन्द्र भरतिया राजस्थानी के नव-जागरण काल के मशाल हैं। आधुनिक राजस्थानी कथा-साहित्य और नाटक-साहित्य में पहले प्रयोग भरतियाजी के ही मिलते हैं जिनकी चर्चा अन्यत्र की गई है।

बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा राजस्थानी-साहित्य की प्रचुर सामग्री प्रकाश में लाये हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने साहित्यिक शोध विषयक कई निबन्ध राजस्थानी में लिखे हैं। श्री भँवरलाल नाहटा ने सरस और सरल राजस्थानी में कई लघु-कथाएं भी लिखी हैं।

श्री मुरलीधर व्यास की कहानियों में आधुनिक गद्य का सौष्ठव मिलता है। व्यासजी की चित्ताकर्षक और फड़कती हुई शैली में राजस्थानी का सौन्दर्य निखरा है। उनकी नयी भाव-व्यंजना ने भाषा की सामर्थ्य का बढ़ाया है।

रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने काफी परिमाण में राजस्थानी-गद्य प्रस्तुत किया है। लोक-वार्ताओं और ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित आपकी कई कहानियों में बोलचाल की सरल राजस्थानी मिलती है। राजस्थानी भाषा की प्रबल हिमायती इस लेखिका ने सरल और ग्राह्य अभिव्यक्ति में विचारों को सुव्यवस्थित भाषा का रूप दिया है। उनकी 'मांझल रात' 'हुंकारो दो सा, अब ऊँवा-ऊँवा नहीं' 'कैर चकवा बात' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी राजस्थानी-गद्य की महान परम्परा के प्रचारकों में से हैं। उन्हें देशी भाषाओं के अंग-प्रत्यय और नख-शिख की जानकारी है। यह राजस्थानी-गद्य के श्रेष्ठ लेखकों में से हैं।

'राजस्थान भारती' के सम्पादक श्री बद्रीप्रसाद साकरिया की भाषा प्रवाहमयी और ओज-गुण प्रधान है।

सर्वश्री डॉ० कन्हैयालाल सहल नानूराम संस्कर्ता श्रीलाल नथमल जोशी मनोहर शर्मा सौभाग्यसिंह शेखावत किशोरकल्पना कान्त, रावत सारस्वत,

कोमल कोठारी, नाथूसिंह और भूपतिराम साकरिया आदि कई लेखक राज स्थानी गद्य-साहित्य में निरन्तर वृद्धि कर रहे हैं।

आधुनिक काल के गद्य लेखकों की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१ 'भाषा री मुख्य खूबी आ है कै भाषा मानता वाली हुवणी। सो जिसी मानताबार भाषा मारवाड़ी है वसी दूसरी एक पण नहीं है, परन्तु इण भाषा री व्याकरण और किताबां न हुवणा सूं इणरी खूबियां री राज में मोटियोड़ा पसार वाली दशा है। अतएव लोग इण भाषा नै मुख्य मान नहीं समझे है, और कठै ई भाषा सम्बन्धी बात चले तो मारवाड़ी भाषा री बड़ी निन्दा करे है। —रामकर्ण आसोपा

२ 'मारवाड़ी माहे घणी कविता छै, मारवाड़ी माहे घणा सरकारी दस्तर छै, मारवाड़ी माहे महाजना का घणा रूजगार चालता छै मारवाड़ी माहे घणो पत्र व्यवहार छै, और मारवाड़ी माहे राजकीय सामाजिक और व्यवहारिक घणा लेख छै। आपणी मातृभाषा नै हीन समझणै सूं आपणो उद्धार किण तरह हो सके ? —शिवचन्द्र भरतिया

३ 'राजस्थानी भाषा में साहित्य तो खूब रच्यो गयो पण छाप तांई पुग्यो बहोत ही कम है। लगां लगां लोगां कनै घर गांवां भण्डारां में हजारू हाथरी लिख्योड़ी पोथ्यां पड़ी है। आजकल पुराणी रचनावां रै पढणै रा सौक ओछो होय रह्यो है। —अगरचन्द नाहटा

४ 'एक स्यालियो री बात बोली। सुण' रै राजन री मुहडै बी नै पुकार पूछ्यो—"थे कुण हूं ? मुहडै बी कयो—"अन्नदाता ऐ स्यालिया हूं। राजजी कया—"ऐ कठै रैवे ? मुंहडो बी—'अन्नदाता जगल में रैवे" —भंवरलाल नाहटा

५ छोछ रो बगत सूरज भगवान आपरी किरणांकर बरे पधारिया। भाखा बिच काली काली फरक नाय' र पखी घरा आम्ही मुण्डा कीया। सूरज री किरणां सूं मुंगेरी रम्योड़ी पांखां पसारता लीला आभा रै नीचे उडरिया। झूंपडा में सूं छोटा छोटा मुण्डा काढ्यां बच्चा मांयी रै आवैरी सूं सूं करता बाट न्हाल रिया। —रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत

६ 'म्हारो तो ओ विश्वास है के प्रांतीय भाषा वां में जितो ओ साहित्य धन राजस्थानी रै भण्डार में भरियो पड़ियो है उतो क्वाच ही' ज कोई दूजी प्रांतीय भाषा रै खजाने में देखण में आवैला।" —बद्रीप्रसाद साकरिया

७ 'कोरिये घड़े रो पाणी माँ। जीम सूकै'—रामू बोल्यो। रामू-किसने वाली रो बेटो। मा रो काळेसर। घर रो चानणो। साथी संगळिया रे मन लागतो। उमर कोई पन्दरा सोळा साल। नांव में फूटरो में सिरियो। गोरो नाकनक्शो। बड़ी बड़ी आँखों—धाव तीन दिन सू गुमसुम में। —चन्द्रसिंह

८ म्हारी आ मान्यता है क राजस्थानी रे पुनर्निर्माण रो आन्दोलन सफळ करण सारू राजस्थानी रचनावाँ ने लोकप्रिय बणावणी चाही जै। पर रचनावाँ लोकप्रिय जद ही बण सकै जद आम आदमी री समझ में आवण जोगी भासा में ई लिखी जावै। —रावत सारस्वत

९ 'रीति ग्रन्थां रे कुछ निश्चित नियमां री कसौटी पर आलोचना करणे री अेक पद्धति है जिसने निर्णयात्मक आलोचना प्रणाली कही जा सके।'

डा॰ कन्हैयालाल सहल

१० हिन्दुस्तान रे माँय बिलायतां रा वाणिया आया। दिल्ली रा पातसाह बहादुरशाह ने केद कीधो। ज्यां रा बेटां पोतरां ने मारिया। दिल्ली रो बेहाल कीधो। बादस्याह ने रंगून वहम रै मांय बैठासियां अठै सो आपरो मरणो रा दिन पूरा कीधा। अठै अब फरांसी पूर्णवासी फिरंगी माय में आपरो मड़ो मांड कीधो। —सौभाग्यसिंह शेखावत

११ राजस्थान रा डेढ़ करोड़ वासी जिका में समता बरागड नई, भदपा लिख्या डाक्टर, इन्जनियर-वकील मास्टर-बाबू और आछा आछा मोमी माथे विराजमान। पण वर्ती री मायड़ भाषा राजस्थानी रो कोई हाल है।' —श्रीलाल नथमल जोशी

१२ 'दिवासी री रात में गाँवों रा बालक मेळा री ब्यारू' मेर चक्कर लगावें के एक डंडे रे माथै पर लोहू री तार लगा लेवे अर उण तार रै कपड़ो लपेट लेवे। उणमें माथे 'मिट्टीपड़ो' पिरोय लेवे। इण पर तेल गेर कर रोशनी करै—ई चीजों रो नाम 'हीड़ा' है। —मनोहर शर्मा

१३ 'अेक छिण में उण रै मन में धिरयो चितराम मंडग्यो जिको मोयामी कोठड़ी में रेवण हाली उणरी लुगाई ने चितरो उरा देवे। एक ओर छाने छाने रसोवड़ी में बड़े अठे सू बो ओरे ओमण हाले कमरे में आवै.........., मांरिया रा पग भूजण लागग्या अर उण रे समचे सरीर में अेक धूजणी सी क छूटगी। —किशोर कल्पना कान्त

राजस्थानी गद्य के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न भाषा की एक रूपता का है। राजस्थानी भाषा के अस्तित्व और उसके शुभ स्वरूप के

सम्बन्ध में आज भी राजस्थानी के विद्वानों में काफी मतभेद मिलते हैं। कुछ विद्वान महानुभाव भाषा को क्षेत्रीय संकुचितताओं में बांधने का प्रयत्न करते हैं जो भाषा के विकास के लिए घातक सिद्ध हो रहा है।

इस विषमता का एक प्रमुख कारण यह है कि राजस्थान की एक राजनैतिक इकाई में बंधने से पूर्व यहां के विभिन्न रजवाड़ों ने अपने राज्य कार्य में राजस्थानी के क्षेत्रीय स्वरूपों को ही अंगीकार किया। रजवाड़ों के अनेक पट्टे परवानों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि एक रजवाड़े और दूसरे रजवाड़े की भाषा में मूलतः समानता होते हुए भी साधारण अन्तर अवश्य मिलता है। यह अन्तर वस्तुतः बोली का है भाषा का नहीं। भाषा का कोई साहित्यिक रूप बन सके इस ओर किसी का ध्यान था भी नहीं।

यह काम राजस्थानी भाषा के विद्वानों और वैयाकरणों का है कि वे राजस्थानी साहित्य की पूर्व परम्परा में उस भाषा के वास्तविक स्वरूप के दर्शन करें और वहीं से अपनी एकीकृत भाषा सम्बन्धी मान्यता स्थापित करें।

राजस्थान के एक संगठन में बंध जाने के पश्चात् प्रान्त की साहित्यिक और सांस्कृतिक विभिन्नताएँ स्वतः एकरूप होती जा रही हैं। राजस्थानी में आज जो कुछ लिखा जा रहा है उसे सम्बन्धित बोलियों के प्रभाव के नाम पर विभाजित नहीं किया जा सकता। राजस्थानी में नव-रचना की ओर लेखकों का महत्व बढ़ता जा रहा है। उसका भविष्य उज्ज्वल है।



नाटक—एकांकी

डा॰ दशरथ ओझा ने हिन्दी भाषा को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए हिन्दी नाटक की उत्पत्ति १३ वीं शताब्दी से मानी है।[1] उनके इस निष्कर्ष का आधार 'गय सुकुमार रास' है जिसकी रचना लगभग सं॰ १३०० में हुई थी। यह रास ग्रन्थ उस समय का है जब अपभ्रंश और राजस्थानी का संधि-काल था। इस नाटक की भाषा अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी है अतः श्री गोवर्द्धन शर्मा इसी को राजस्थानी का प्रथम नाटक मानते हैं।[2]

१७ वीं और १८ वी सदी में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जब राजस्थान में 'रास' और ख्याल अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। 'रास' और 'ख्याल' गीत नाट्य के रूप में दृश्य काव्य के ही अन्तर्गत स्वीकार किये जाते हैं।

'ख्याल' और 'रास' नाटकों में जन-भावनाओं का अधिक प्राधान्य था अतः ये लोक-रुचि को आकर्षित करते थे। प्राप्त जानकारी के अनुसार कुछ विभिन्न रास और ख्यालों का परिचय इस प्रकार है—

(अ) धार्मिक—ख्याल पूरन मल भगत को ख्याल मीरा मङ्गल को ख्याल नरसी मुता को ख्याल भगत प्रहलाद को।

(आ) पौराणिक—ख्याल नल दमयन्ती को ख्याल राजा शिव उरवशी को ख्याल किसन रुकमणी को।

(इ) प्रेम मूलक—ख्याल ढोला मारू को ख्याल राजा चन्द मलियागिरि को, ख्याल विक्रम नागवन्ती को ख्याल निहाल दे सुलतान को।

(ई) ऐतिहासिक—ख्याल राजा अमरसिंह को ख्याल राव रिड़मल सोढ़ी को ख्याल बीरमदे को ख्याल जैसल तोलादे को।

(उ) वीरपूजा—ख्याल चौहान को ख्याल श्रवण कुमार को ख्याल तेजाजी को ख्याल पाबूजी राठौड़ को

---

१ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डा॰ दशरथ ओझा।

२ राजस्थानी नाट्य परम्परा—श्री गोवर्द्धन शर्मा (साहित्य सन्देश वर्ष १७ अङ्क १ पृष्ठ ६७।

(ऊ) मनोरंजन—मीठकी सहुआणी को ख्याल बुधिया मटियारए के ख्याल चार भंगेड़ी को ।

(ए) आदर्श—ख्याल सत् हरिश्चन्द्र को ख्याल राजा भरथरी पिंगला को ख्याल राजा मोरध्वज को ख्याल राजा बलि को ।

(ऐ) समस्या-मूलक सुधारवादी—ख्याल रिसमत रानी को ख्याल बेटी बेचा को ख्याल भंगेड़ी भंगेड़ी को ख्याल चोर जुआरी को ।

श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही ख्याल और रमतों की इस प्रवृत्ति ने बहुत जोर पकड़ा । अनेक स्थानों में लोकमंच तैयार हुए और अनेक कवियों ने ख्याल-संज्ञक रचनाएँ लिखी । राजस्थान में रचे गये और खेले गये सैंकड़ो ख्यालों की सूची नाहटाजी ने श्रम से प्रकाशित भी करवाई है ।

नाहटाजी के अनुसार आधुनिक शैली के नाटक २० वीं सदी के पूर्वार्द्ध में लिखे जाने शुरू हुए ।[1] उपलब्ध नाटकों में सर्व प्रथम श्री भगवतीप्रसाद दारुका का 'वृद्ध विवाह नाटक' तथा राजस्थानी के अनन्य सेवक स्व० शिवचन्द भरतिया के तीन नाटकों १ 'केसर विलास' २ 'फाटका जंजाल' और ३ बुढ़ापा की सगाई' के नाम आते हैं । सन् १९१५ में प्रकाशित भरतियाजी के तीनों नाटक खूब लोकप्रिय हुए ।

जामगांव के श्री मथुरादास भट्ट ने अपने नाटक 'रुक्मणीहरण' (प्रकाशित सन् १९२) की प्रस्तावना में भी अपना यह मत व्यक्त किया है कि मारवाड़ी भाषा के सच्चे लेखक या ग्रन्थकार, मेरी नजर में तो इन्दौर निवासी श्री भरतियाजी हुए हैं । श्री भट्टजी के इस नाटक में ११ प्रकरण हैं । आपने इसे 'नवलकथा' भी कहा है ।

तत्पश्चात् श्री नारायण अग्रवाल के 'चाचाढचम' (प्रकाशित सन् १९२२) और 'कलयुगी कृष्ण रुक्मणी नाटक' का उल्लेख आवश्यक है । श्री अग्रवाल द्वारा लिखित कई नाटकों का हवाला भी श्री अगरचन्द नाहटा ने दिया है यथा—
१ महाभारत का श्री गणेश २ कलकत्ते वाली री भेंट ३ भाग्योदय ४ सत्यधर्म
५. समाज सेवक भजन ६ महाराणा प्रताप और ७ सरस्वती विजय ।

बरार के श्री शिवदासजी बियाणी द्वारा लिखित दो नाटक भी प्रकाशित

---

१ राजस्थानी भाषा के ५० नाटक और ३ उपन्यास—(कल्पना, मार्च ५८)

हुए जिनके नाम 'विजयादसमी' और 'बाल रामायण' हैं। यह नाटक राजस्थानी (मारवाड़ी) में लिखे गये।

इसी संदर्भ में श्री गुलाबचन्द नागौरी द्वारा लिखी कई छोटी-छोटी पुस्तकों (जुगारों री सभा, मौसरो मारणो, बेटी की बिक्री-बहू की खरीदी, मोरयां की माला, मारवाड़ी पगड़ी और जुआरी की लाज) की चर्चा परमावश्यक है। श्री नागौरी और श्री भगवान ने नाटक रचना के क्षेत्र में सक्रिय योगदान देकर राजस्थानी के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया है।

श्री गुलाबचन्द नागौरी के 'मारवाड़ी मौसर' और नारायणदास के 'बाल ब्याह की फार्स' में सामाजिक यथार्थ की दिलचस्प झांकियां हैं।

पं० ठाकुरदत्त शर्मा ने 'पंचायत रो बायस्कोप' शीर्षक से पंचायती न्याय और पंचों के विवेक पर विनोदपूर्ण रचना की है।

श्री मथुरादास भट्टड़ ने 'कर्जे का अभिशाप' में दिखाया है कि कर्जदार का सूद किस प्रकार द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता है और कर्जे से छुटकारा पाना मोक्ष प्राप्ति से कम दुर्लभ सिद्धि नहीं। श्री शिवगुप्त ने भी 'किसन की चौपन्नी का स्वयंवर' लिखा।

'स्वराज्य बावनी' के रचयिता सेठ कवि ने कई ख्याल बनाये हैं यथा—
१ दीवान सुन्दरी २ पंजाबी मैना ३ मैना तम्बोलन ४ भरथरी जोग ५. मैना जलम रो बेला ६ भूमल महेन्दरी रो बेला ७ अवतार लीला आदि।

'मैना जलम' एक श्रेष्ठ सुधारवादी नाटक है। आपके नाटकों में मनोरंजन के साथ-साथ सुधारवादी दृष्टिकोण भी मिलता है।

श्री शोभाचन्द जम्मड़ ने 'वृद्ध विवाह विदूषण' नामक प्रहसन लिखा और उसे स्वयं प्रकाशित करवाया। श्री जम्मड़ राजस्थानी के प्रबल हिमायतियों में से थे और आप कहा करते थे कि जब भारत की अन्यान्य भारतीय भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य रचा जा सकता है तो राजस्थानी में क्यों नहीं रचा जा सकता?

'गांव सुधार या गोमाजाट' नाटक सं० १९९८ में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक श्रीनाथ मोदी थे।

सन् १९२८ में प्रकाशित पं० मदनमोहन सिद्ध के सामाजिक नाटक 'जयपुर की ज्योणार' का बहुत प्रचार हुआ। इस नाटक में जयपुरी बोली का अधिक प्रभाव है।

फिल्मी गीतकार और राजस्थानी के श्रेष्ठ कवि श्री भरत व्यास ने भी

'मरवण' और 'रङ्गीला राजस्थान' नाटक लिखे हैं। राजस्थान की संस्कृति से भी ब्यास को बड़ा लगाव है इसके अतिरिक्त फिल्मी जीवन ही उनका व्यवसाय है, अतः अभिनय-कला की दृष्टि से भी इनके नाटकों में बड़ी जान है।

'कलियुगी कृष्ण रुक्मण नाटक' भी बालमित्र विरचित है जो कथानक से सम्बद्ध चरित्रों की अर्वाचीन और प्राचीन स्थितियों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करता है।

जयपुर के श्री गिरिधारीलाल शास्त्री का 'प्रणवीर प्रताप' मेवाड़ी बोली से प्रभावित राजस्थानी में लिखा गया नाटक है। शास्त्रीजी ने 'दुर्गावती' नामक एक अन्य नाटक भी लिखा है। 'प्रणवीर प्रताप' में ऐतिहासिक पात्रों के साथ कुछ काल्पनिक पात्रों को भी मंच पर उतारा गया है। नाटक की प्रस्तावना में ही युगावतार गांधी का स्मरण करके स्वतंत्रता-प्रेमी महाराणा प्रताप पर नाटक खेलने के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तावना में भाषा-विवाद पर भी दिलचस्प टिप्पणी की गई है। प्रसङ्ग और वातावरण के अनुकूल बीच-बीच में काव्य का भी समन्वय है।

श्री डा० मा वि जोशी के 'जागीरदार' में जागीरदार और किसानों की कथा है। यह नाटक राजस्थानी का सर्व-श्रेष्ठ नाटक है।[1] राष्ट्रीय जागरण की भावना इसका केन्द्र-बिन्दु है। इस नाटक की भाषा मालवी है।

एकांकी

आज परिस्थितियों की जटिलता बढ़ गई है। जीवन की दौड़ में निरन्तर भागते हुए समाज के लिये समय का मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया है। अब बड़े-बड़े नाटकों और महाकाव्यों को सम्पूर्ण रूप से देखने-पढ़ने का या सुनने का अवकाश नहीं रहा। लोक-रुचि अब बड़े नाटकों के स्थान पर एकाङ्कियों की ओर, बड़े उपन्यासों के स्थान पर लघुकथाओं की ओर तथा महाकाव्यों के स्थान पर मुक्तक कविताओं अथवा गीतों की ओर मुड़ी है।

स्व० श्री सूर्यकरण पारीक ने 'बोलावण' एकांकी नाटक के प्राक्कथन में व्यस्त जीवन और उसकी जटिलताओं का संकेत करके यह स्पष्ट किया है कि गीत एकाङ्की और लघुकथाओं के विकास में समय की माँग का बहुत बड़ा हाथ रहा है। आज राजस्थानी-साहित्य में ही नहीं हिन्दी और अन्य भाषाओं के साहित्य में भी यह परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होता है।

---

1 राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास—डा० शिवस्वरूप शर्मा 'अचल'

स्व० पारीकजी ने पाश्चात्य नाट्य-शैलियों का अच्छा अध्ययन किया था। उन्होंने गल्प, श्रव्य-काव्य और एकांकियों का प्रचलन देखा और उसी के अनुसार हिन्दी और राजस्थानी की नाट्य रचना को नया मोड़ दिया। नये प्रयोग के क्रम में उन्होंने 'बोलावरण' एकांकी नाटिका लिखी जिसका प्रयोजन रचना में नये प्रयोग के साथ-साथ राजस्थानी जनता का स्वस्थ मनोरञ्जन करना भी था।

एकांकी की विशेषताओं के सम्बन्ध में भी पारीक ने लिखा है कि—

परिसीमित व्यापार-केन्द्र होने के कारण वस्तु काल और समय की एकता की रक्षा जिस सरलता से एकांकी में होती है वैसी बड़े नाटकों में नहीं। अपनी सादगी सरलता और कलापूर्ण सूक्ष्मता के लिये इस प्रकार के एकांकी आधुनिक साहित्य-मर्मज्ञ समाज को अधिक रुचिग्राहक लगते हैं। इसी कारण इन दिनों एकांकी नाटक-नाटिकायें गल्पों और मुक्तक कविताओं का साहित्य उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा है। साहित्य की प्रगति अनेकता से एकता की ओर जटिलता से सरलता की ओर, तथा कौतूहल उत्पादिनी वृत्ति से स्वाभाविकता के चित्रण की ओर झुक रही है।

आकाशवाणी देवसहाय और अलौकिक सत्ता (Supernatural Element) के बल पर घटनेवाली असम्भाव्य घटनाओं से परिपूर्ण साहित्य को पढ़कर वर्तमान काल का पंडित समाज नाक-भौं सिकोड़ेगा परन्तु जहाँ हूबहू मानव-जीवन की वास्तविक सत्यता का प्रदर्शन सौन्दर्य-कला की रीति से स्फुटित देखेगा उसके हृदय की कली खिले बिना नहीं रहेगी।

पारीकजी के 'बोलावरण' या प्रतिज्ञापूर्ति एकांकी में छोटे-छोटे ९ दृश्य हैं जिनमें देसकाल के निर्देशन का बड़ा ध्यान रखा गया है। देश और प्रान्त प्रकृति और वातावरण तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से नाटक-रचना में विशेष सतर्कता बरती गई है और उस नाट्य-शैलियों का रूढ़ आवरण पहनाकर कहीं भी विकृत नहीं किया गया है। बोलावरण' में राजस्थान के यथार्थ जीवन का स्वाभाविक चित्रण है। कथा-वस्तु सरल है कथा की आन्तरिक भूमि में लोक-वातावरण की स्वाभाविक झलक मिलती है। स्थान स्थान पर प्रसंगोचित लोक-गीतों का समावेश किया गया है।

प्रस्तुत एकांकी जहाँ एक ओर कथा की दृष्टि से राजस्थान के अतीत गौरव शौर्य और प्रतिज्ञा-पालन का चित्र प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर अर्वाचीन राजस्थानी जीवन की वास्तविकता और स्वाभाविकता का भी प्रतिनिधित्व करता है।

वक्तार

'बोलावण' बोल-चाल की प्रचलित राजस्थानी अभिव्यक्ति है। पारीकजी का कहना था कि 'यह स्वाभाविकता यह यथार्थता और सामंजस्य—जो हिन्दी में पैदा नहीं होता राजस्थानी में सरलता से व्यक्त हो जाता है। 'बोलावण' पारीकजी के इसी प्रयत्न का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

हिन्दी के प्रमुख कहानीकार श्री मोहनसिंह सेंगर ने राजस्थानी में भी एकांकी लिखे हैं। 'पीसहाथ' राजस्थानी का सामाजिक एकांकी है।

सेंगरजी पर अंग्रेजी से अधिक फ्रांस की नाट्यकला का प्रभाव है। इनके एकांकी हल्के विषय के व्यंग्यपूर्ण और चरित्र प्रधान होते हैं। आधुनिक सभ्यता के वास्तविक चित्र भ्रष्टाचार प्रचार और दिखावे की विकृतियों को प्रकट कर पाने में सेंगरजी अधिक सफल हैं। 'पीसहाथ' दहेज और विवाह पद्धति पर आधारित यथार्थवादी सामाजिक एकांकी है।

श्री नारायणदत्त श्रीमाली का 'माटी री काया' नौ एकांकियों का संग्रह है। यह शरीर माटी की काया है जो एक दिन माटी में मिल जायगा। जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह महान संकल्पों की पूर्ति में इस नश्वर जीवन को दाँव पर लगादे। श्रीमालीजी का यह एकांकी संग्रह मूलतः इसी भावना पर आधारित है।

'जै एकलिंग' महाराणा प्रताप के जीवन से सम्बन्धित एकांकी है। शहंशाह अकबर एक बार उस स्वाभिमानी सिंह को देखना चाहता है जिसने अनेक कष्टयातना में फँसकर भी मुगल सल्तनत की अधीनता स्वीकार नहीं की। वह फ़कीर का वेष बनाकर प्रताप से मिलता है। प्रताप क्षुधा-पीड़ित परिवार की रोटी छीनकर भी फ़कीरों की झोली भरता है। अकबर की शरण में न जाने के औचित्य पर प्रताप निम्न वक्तव्य में प्रकाश डालता है—

'ए तो रोटी रा टुकड़ा मिले पण भूखा भी रैवणा पड़े तो कई होवो। मा रो काम है मा री मरियादा हुँनो मारे है मा रो गुमान मा री इज्जत हाँका कर-कर ह की रई है के मने कुण इण दुखाँ सूं मुगतकर भो तो आजादी रो काम है। घर या टापर तो ने भी भाव नहीं तो काँटे काँटा रो ताज पैरियाँ। तो पछे म्हूं भी तो आजादी रो भूखो मौत आवे सूं डर समजणू लाग जावै।'

'बाँकी मैण' चौहान पृथ्वीराज से सम्बन्धित है। 'अपनराव' संगीत-सम्राट् तानसेन का प्रसङ्ग है, 'अमरो' राठौड़ वीर दुर्गादास और अजीतसिंह के राज्यारोहण की कथा है। 'माफरा' 'मिरामरा री परतिम्या' सूनी सेज 'बनमाली' आदि एकांकी भी ऐतिहासिक कथानक हैं।

नारायणदत्त श्रीमाली ने राजस्थानी में ऐतिहासिक एकांकी की रचना के क्षेत्र को समृद्ध किया है। उन्होंने राजस्थानी में लगभग चालीस एकांकी लिखे हैं और आजकल 'बलिदान' नाटक लिख रहे हैं। आपकी भाषा का प्रवाह सामान्य निरक्षर राजस्थानी को भी ग्राह्य है। भाषा में जोधपुरी पुट है। रेडियो-एकांकी के क्षेत्र में श्रीमालीजी ने कई सुन्दर प्रयोग किये हैं।

बीकानेर के भगवानदास गोस्वामी कम से कम उपकरणों वाले एकांकी लिखने के पक्ष में हैं। राजस्थानी रंगमंच को अधिकाधिक क्षमता प्राप्त हो सके वे इस दृष्टि से एकांकी लिखते हैं। उनका 'शांतिदूत' पौराणिक आख्यान नल-दमयन्ती का प्रसङ्ग है जिसमें युद्ध और शांति की समस्याओं पर आधुनिक संदर्भ में प्रकाश डाला गया है। एकांकी में अहिंसा और शांति-प्रधान भारतीय संस्कृति का चित्र है। 'राव जैतसी' उनका लोक-संस्कृति प्रधान एकांकी है।

बीकानेर के श्री श्रीलालचन्द्र अम्मड़ ने सुधारवादी प्रहसन लिखे हैं, जिनमें सामाजिक विकृतियों का चित्रण किया गया है। भारतीय परम्परा और विवेक-शीलता की कसौटी पर सामाजिक दुर्बलताओं को परखकर श्री अम्मड़ ने सुधार वादी दृष्टिकोण से कई एकांकियों की रचना की है। भाषा में बीकानेर की क्षेत्रीय बोली का पुट है। अभिव्यक्ति में शिष्टता और सुरुचि का विशेष ध्यान रखा गया है।

बीकानेर क्षेत्र के श्री बैजनाथ पँवार को ग्रामीण-जीवन के विभिन्न पहलुओं की गहरी जानकारी है। आपके एकांकी मनोरंजक व शिक्षा-प्रद होते हैं। नाटकों के विषय रिश्वतखोरी बाल-विवाह, मृतक भोज जैसी सामाजिक समस्याएँ और कुरीतियाँ हैं। 'जय पंचायत राज' 'आपणो आदमी' 'परदा प्रथा' 'मामूपणों का कुचक्र' शिक्षा से मान' आपके कुछ उल्लेखनीय एकांकी हैं। श्री पंवार स्वयं अभिनेता भी हैं। इनके लघु एकांकियों का अभिनय अधिकतम बीस मिनिट में ही सकता है। श्री पंवार की मान्यता है कि सरकारी योजनाओं और विकास-कार्यक्रमों का प्रचार भी राजस्थानी एकांकी नाटकों के माध्यम से ही अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है।

श्री मोतीसिंह राठौड़ ने भी कई एकांकी और प्रहसन लिखे हैं। रामगढ़ (शेखावाटी) के श्री मदनलाल गुप्त ने भी कई अच्छे एकांकी लिखे हैं, जिनमें शिष्ट हास्यरस की प्रधानता है।

प्रो॰ आदित्यस्वरूप माथुर ने काफी संख्या में और विविध प्रकार के एकांकी लिखे हैं। 'सतरंगिणी' उनके सात एकांकियों का संग्रह है। श्री माथुर ने सामाजिक एकांकी अधिक लिखे हैं जिनमें समस्याओं को उठाया गया है

समस्याएँ

समस्याओं के विविध पहलुओं पर विचार किया गया है और उनके निवारण निदान खोजने का प्रयत्न भी किया गया है। सुधारवादी दृष्टिकोण और प्रभावोत्पादक शैली प्रो॰ माथुर की एकांकी रचना की विशेषताएँ हैं।

'लालची माँ बाप' 'बाल विधवा' 'ठाकुरशाही की एक झलक' 'फिल्मी हवा' 'बेकारी' 'काला बाजार' 'कर्ज का अभिशाप' 'रोग अस्पताल और डाक्टर' 'यूनियन का रोग' 'थर्ड क्लास का डिब्बा' आदि कई एकांकियों में आपने ग्रामीण और शहरी राजस्थानी-समाज के यथार्थ चित्र खींचे हैं। कथोपकथन स्वाभाविक तथा सरल और अभिनेय गुणों से युक्त है। ठाकुर, पंचायतें छुआ-छूत रस्म-रिवाज आदि से सम्बन्धित जीवन को प्रो॰ माथुर ने बड़ी सफलता और सरलता से एकांकियों में चित्रित किया है। उनके नाटक राजस्थानी जीवन की बोलती तस्वीरें हैं।

श्री गणपतलाल डांगी राजस्थानी लोक-मंच से बंधे हुए हैं। उन्होंने कई श्रेष्ठ एकांकी लिखे हैं। श्री डांगी एक कुशल अभिनेता लोक-सङ्गीतज्ञ और लेखक सभी कुछ हैं। अभिनय की दृष्टि से भी उनके नाटकों में बड़ी जान है। 'कुंवरी चाकर' श्री डांगी का एक प्रतिनिधि एकांकी है।

लाडनूं के श्री श्रीमन्तकुमार व्यास का 'सैंसम मोटिम' सात एकांकी नाटकों का संग्रह है। व्यास के कई नाटक 'राजस्थानी वीर' 'मरुवाणी' और 'प्रजा-सेवक' में प्रकाशित हो चुके हैं। 'जन और धरती' तथा 'कांग्रेस मौत गांव बदलगी' उनके प्रमुख एकांकी हैं। 'जन और धरती' सर्वोदयी विचार-धारा का संदेश-वाहक है।

गीति नाट्य

राजस्थानी के गीति नाट्यकारों में श्री गणेशीलाल व्यास 'उस्ताद' अग्रणी हैं। उनके गीति नाट्यों में राजस्थान की संस्कृति और जन जीवन का जीता जागता चित्रण मिलता है। उनके गीति नाट्यों में नई किरण का सन्देश है। 'बणजारो' उनका अत्यधिक लोक प्रिय गीति नाट्य है जिसका कई प्रमुख मंचों पर सफल अभिनय हो चुका है। इन सङ्गीत एवं नृत्य नाटिकाओं की कथावस्तु और शैली सर्वथा नयी है, साथ ही उस्ताद ने इनके कथोपकथन को शैली को मौलिक लोक धुनों का परिवेश दिया है। सङ्गीत लोक-वातावरण से अनुप्राणित है लेकिन प्रभावित नहीं उसका अपना पृथक अस्तित्व है। उद्बोधन हर्षोल्लास चेतना उत्साह, श्रम और नयी चेतना की किरणें उस्ताद के रूपकों की जान हैं।

धरती

जनकवि 'उस्ताद' का लोक-नाट्य-परम्परा में यह नया योगदान उनकी विलक्षण सृजन-सामर्थ्य का उदाहरण है।

भारतीय लोक-कला-मण्डल के संचालक श्री देवीलाल सामर ने भी कई नृत्य-नाटिकाएँ और एकाङ्की लिखे हैं।

संङ्गीत नाटिकाओं की दिशा में मनोहर शर्मा ने भी प्रगति की है। उनकी कुछ नाटिकाएँ और रूपक प्रकाशित हो चुके हैं।

गद्य काव्य

गद्य काव्य लिखनेवालों में सर्वप्रथम श्री चिमनलाल तिवाड़ी का नाम आता है, जिनके कुछ गद्यगीत पंचराज में प्रकाशित हुए थे।

सर्वश्री चन्द्रसिंह मुरलीधर व्यास कन्हैयालाल सेठिया और विद्याधर शास्त्री राजस्थानी के कुशल गद्यकाव्य रचयिता हैं। श्री कन्हैयालाल सेठिया का 'गळगचिया' नाम से गद्य-काव्य का संग्रह है। इनके गद्य में रोचकता और शैली में प्रांजलता है।

श्री विद्याधर शास्त्री का 'नागपाश' जो राजस्थानी में छपा है गद्य काव्य का एक सुन्दर उदाहरण है।

श्री चन्द्रसिंह और श्री मुरलीधर व्यास के कई गद्यगीत 'मरुवाणी' में प्रकाशित हुए हैं जो राजस्थानी गद्यकाव्य के प्रतिनिधि उदाहरण हैं।

गद्य काव्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१ 'उनाळे री तपती तावड़ी में ताती वेळ्यां पर चालतां चालतां जद पगथळ्यां में फाला पड़ ज्यावे अर मुंडे सूं मुळकती वे उण समै यूं भी सोळमी रे सामै बीते बसन्त री मार मायो किस को पहेली—पण बसन्त री बहार लूटतां थाकै भोगण वाले भूलाले रो ध्यान किण नै ही को आवे नी।

—चन्द्रसिंह

२ 'मानवी! इमरत री हद हुया करै है। था जमीनो थारो है। था बात मानी। था अपणायत थोड़ी कोनी है। पण इण री उपज थारै बाप री धरोहर है इण वास्ते बिरथा धरत में धूम थां कळियां अर फूलां ने आपणा वास्ते मसळ मतना। थोड़ो चेतो राख। यूं तो इणरो कोरो रुपालो ही है।

—चन्द्रसिंह

३ 'चोमटे में हाथी बिकतो देख गोपाल कयो, 'एक कोडी में हाथी मिले है। मनैई ले दोनी?

बाबाजी बोल्या—मूं गो है बेटा मूं गो होएा दे। च्यार पांच बरसां पछै फेर गोपाल कयो—हाथी बाजार में भावै है बाबाजी।

बाबाजी बोल्या—मूं गो है बेटा-हाथी सैर्गा।   —श्री मुरलीधर व्यास

४ 'सिस्या हूंता ही मिनख उठ्यो घर धीये रै मूं डै आगै तूली मेल दी। धीयो भट्ट-भट्ट कर र बोल्यो— बड़ा आदमी इयां के करे है ?

मिनख हँसर बोल्यो—अरे तू हो के ? मन्नै अंधेरे में सूझ्यो ही कोनी।

—कन्हैयालाल सेठिया

१ 'वाम्बी रै कलसै माटी रै घड़े नै कयो—बड़ा। थारे में बाल्योड़ो पाणी ठंडो किंयां रैवै म्हारे में बाल्योड़ो तातो किंयां हुय ज्यावै ? माटी रो घड़ो बोल्यो—मैं पाणी नै म्हारे जीव में बाल्यां रखूं हूं—तू भांतरै राखे सो ही कारण है।   —कन्हैयालाल सेठिया

६ 'सिन्ध्या होएा आली ही। धोरां की रेत ठन्डी होगी ही। साथ में अकेलो ई टीबा के बीच-बीच में खीप कांठिया और बौसी की बहार देखतो-देखतो दूर ताणी चल्यो आयो। मैं जद-जद टीबा में घूमतो आया करूं हूं जदे ई कोई न कोई ऊंचो सो टीबो ढूंढ कर बीं के ऊपर बैठ' र चाक वाली प्राकृतिक छटा नै देख्या करूं हूं।   श्री विद्याधर शास्त्री

कहानी

बात सरीखी भूंठी नईं—बात सरीखी मीठी नईं।
बात में हुंकारो-फौज में नगारो॥
बात चालै बारा कोस-फागो चालै अठारा कोस॥

गांवों में रात्रि के अवकाश के क्षणों में बूढ़ों द्वारा बच्चों के विनोदार्थ जो कहानियां सुनाई जाती हैं उनकी भूमिका उपरोक्त पंक्तियों से बांधी जाती है। हुंकारा देने वाला दूसरा व्यक्ति न हो तो बात का रंग नहीं जमता और चक्कर जितनी मीठी होती है—बात को उतना ही भूठा समझो कहानी के प्राचीन स्वरूप के सम्बन्ध में यह मान्यता ठीक उतरती है। एक समय था जब कहानी यथार्थ से बहुत दूर थी।

भारत की प्रत्येक भाषा में धार्मिक नैतिक और उपदेशात्मक कथाएँ भी मिलती हैं। पंचतन्त्र और ईसप की कहानियां रामायण महाभारत और भागवत तथा जातक कथाएं इसके सुन्दर उदाहरण हैं। हमारे पौराणिक साहित्य का तो सम्पूर्ण ज्ञान ही दृष्टान्तों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

राजस्थान का प्राचीन कहानी साहित्य अत्यधिक समृद्ध है। ख्यात, बात वचनिका दवावैत हाल-महकाल-हकीकत और बात-बारता व्रत-कथाएँ, और पौराणिक कथाएँ आदि साहित्य आधुनिक-कथा साहित्य की परम्परा में आता है।

राजस्थान की कहानियों पर प्रमुखतः चार संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा—१ ब्राह्मण संस्कृति २ जैन संस्कृति ३ राजपूत संस्कृति और ४ मुस्लिम संस्कृति।[1]

राजस्थान मे जो असंख्य कहानियाँ सुनी-सुनाई जाती हैं उन्हें 'बात' नाम से पुकारा जाता है। बात साहित्य सदियों तक मौखिक ही रहा। इन्हें लिपि बद्ध करने का प्रयास काफी बाद में किया गया। इन कहानियों को सामान्यतः निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१ प्रेम-कथाएँ २ स्त्री चातुर्य की कथाएँ ३ साहस एवं पराक्रम सम्बन्धी कथाएँ ४ भोज और विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाएँ ५ अद्भुत कथाएँ आदि।

इन कहानियों में प्रमुख-रूप से आश्चर्य कुतूहल जिज्ञासा आदि मानसिक मनोवृत्तियों को तुष्ट करने वाले तत्व ही आये है।

आधुनिक-युग में राजस्थानी भाषा के कुछ साहित्य सेवियों ने जिनकी चर्चा पृथक परिच्छेद में की जा रही है अगर इस भाषा को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करा सकने का प्रयत्न न किया गया होता तो सम्भवतः आज राजस्थानी भाषा और साहित्य पर शोध करने की ओर लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं रहती। आधुनिक काव्य की तरह साहित्य की अन्य विधाओं पर भी यह तथ्य पूरा-पूरा लागू हुआ है कि उन्हें परम्परा से बहुत कुछ मिला। जो परम्परा का सूत्र छोड़कर भी चिर-नवीन बना रहे—उस साहित्य में बहुत कुछ खोजा और पाया जा सकता है।

राजस्थानी कथा साहित्य की यह विशेषता भी रही है कि वह सर्वदा न्यूनाधिक रूप से सामान्य जन-जीवन के सुख-दुखों के साथ बंधा रहा। भक्ति और नीति-काव्य के अतिरिक्त काव्य का शेष भण्डार तो बहुत कुछ सामन्ती ठाठ से चिपक गया था लेकिन बार्ता और अन्य कथा साहित्य के पोषण में वहाँ गुंजाइश नहीं थी। सामन्तों और राज्याश्रित कविता की काव्य प्रशस्ति से झूम उठने और अतिशयोक्ति-पूर्ण साहस की कल्पना-मात्र से अपनी दायित्व भावना को संतुष्ट कर लेने वाले आश्रय-दाताओं को कथा का यथार्थक मार्ग भारत घूमने का अवकाश भी कहाँ था?

---

१ राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास—डा० शिवस्वरूप शर्मा 'अचल'

राजस्थानी-भाषा में प्रकाशन की समस्या अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक समय तक रही है और यह समस्या आज भी है। राजस्थानी वैसे देव नागरी-लिपि में ही लिखी जाती है और कुछ शब्दों में असमानता होने पर भी हिन्दी मुद्रणालयों से ही प्रकाशन की सेवा ली जा सकती है लेकिन इस प्रयोग की क्रियान्विति में भी काफी समय लग गया। पिछले २ –२५ वर्ष का काल ही ऐसा है, जिसमें राजस्थानी कथा साहित्य की मुद्रित पुस्तकें मिलती हैं, जिससे उनके रचनाकारों तथा रचनाओं की शक्ति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

आधुनिक राजस्थानी-काल के श्री मुरलीधर व्यास श्री नृसिंहराज और श्री श्रीलाल नथमल जोशी ऐसे कहानीकार हैं जो बहुत वर्षों से कहानियाँ लिखते चले आ रहे हैं।

श्री मुरलीधर व्यास की कहानियों में विशेषता रहती है। हिन्दी कहानी में समयानुसार जितने भी नये प्रयोग हुए हैं उन्हें राजस्थानी में लाने का श्रेय श्री व्यास को है। राजस्थानी गद्य की व्यापकता और सामर्थ्य को नवजीवन देने में श्री व्यास का भारी योगदान रहा है। लघु कहानियाँ लिखने में वे सिद्धहस्त हैं।

श्री व्यास का 'वरसगांठ' कहानी संग्रह राजस्थानी कथा साहित्य का प्रतिनिधि उदाहरण है जिसमें उनकी २१ कहानियाँ संग्रहीत हैं।

श्री व्यास ने कई सुन्दर 'रेखाचित्र' भी लिखे हैं। रेखाचित्रों की भाषा सरल चुटीली और प्रवाह है। एक उदाहरण देखिये—

एक सरदार हो गरम जायरो अर छोटे कामरो-रो सुचकम फोटामोडी दाढ़ी मूं छ सफाचट, कालो रंग चिरमी दाई आख्यां ओछा ओरता सूप दाई दांत। वो छोटां में छोटो अर बड़ां में बड़ो हो। म्हे रै बने बड़ा छोटा रै चुटियोड़ा रैता हा।

श्री मुरलीधर व्यास और श्री मोहनलाल पुरोहित ने अपने सम्मिलित प्रयास से २१ रेखाचित्रों की रचना की है जिसका प्रकाशन राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा शीघ्र ही किया जा रहा है। प्रस्तुत रेखा-चित्रों के विषय धर्म की पूजा भाईचारा अच्छे गुणों का आदर, त्याग विश्वास भक्तिभावना जातिगत भेदभाव जूने रीति-रिवाज आदि से सम्बन्धित है। इन रेखाचित्रों में *मनुष्यों एवं उनके व्यक्तित्वों के विविध प्रकार दर्शाये गये हैं।*

श्री नृसिंहराज की लघु कहानियाँ गहरी संवेदना से ओत-प्रोत रहती हैं पर कहीं-कहीं वे चिन्तनशील और कहीं उनके विचार बोझिल हो जाते हैं।

चिन्तन की गहराई में उनकी दार्शनिकता तो उभरती है लेकिन वे सरसता से प्राप्त नहीं हो पातीं।

सर्व श्री पोसवर्धन शर्मा डा॰ गणपतिराय पुरोहित नृसिंहराज पुरोहित किशोरकल्पना कांत रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत सांवरदान आशिया हरिराम मारवाड़ सौभाग्यसिंह शेखावत रावत सारस्वत रतनलाल बाघीण, मानूराम संस्कर्ता प्रतापनारायण पुरोहित श्रीलाल मिश्र जगदीश माथुर 'कमल' दीनदयाल ओझा भगवानदत्त गोस्वामी कुम्भाराम आर्य रामदेव आचार्य चन्द्रसिंह जोरावरसिंह महीप्रसाद सांकरिया और वैजनाथ पंवार जैसे कई कहानीकार आज राजस्थानी कथा साहित्य में निरन्तर वृद्धि कर रहे हैं।

'लोक कथाओं के मूल अभिप्राय' शीर्षक से डा॰ सहल और मनोहर शर्मा के कई शोध पूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं जिनसे कहानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रति उनकी गहरी पैठ का पता चलता है। श्री शर्मा द्वारा रूपान्तरित और भावानुवादित कई कथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री शर्मा की कहानियों में लोक मानस और मानव मनोविज्ञान के विविध चित्र मिलते हैं। हृदय के अन्तर्द्वन्द्व और मानवी भावनाओं भाव प्रतिमाओं का एक सजीव दर्पण शर्माजी की कहानियों में मिलता है। श्री शर्मा ने कई लघु कथाएँ भी लिखी हैं जिनमें उनकी व्यवस्थित और सरल भाषा, आधुनिक सरस शैली और भावनात्मक अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है। उनकी अभिव्यक्ति पुष्ट व्यवस्थित भावानुकूल और सरल है। कम से कम शब्दों में गहरी से गहरी बात कहने की उनकी गहरी सामर्थ्य है।

डा॰ गणपतिराय पुरोहित की कहानियों में नारी हृदय के सूक्ष्म भावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन मिलता है। आपने मानव मन का अध्ययन किया है और सामाजिक जीवन को आन्दोलित करने वाले साहित्य की रचना भी है। उनकी 'मुकम्मिल' कहानी रूढ़ियों और सामाजिक बन्धनों से जकड़ी एक युवती की कथा है। कहानी में मुस्लिम समाज की कुरीतियों और संकीर्णताओं का विवेचन किया गया है।

जोधपुर के नृसिंहराज पुरोहित एक कुशल कहानीकार हैं। लगभग सन् ४८ से आप राजस्थानीमें सुन्दर कहानियाँ लिख रहे हैं। कहानीकार के रूप में आप सन् १९५० में पुरस्कृत भी हो चुके हैं। 'प्रेत लीला' 'कानू री माँ', 'अहिंसा परमोधर्म' 'कसम कथाई' 'बावड़ी' 'पुत्र रो काम', आदि उनकी ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ हैं। ग्राम्य जीवन ही उनकी

प्रवासी

दिलचस्पी का विषय है। इस अर्थ में वे स्व० मुंशी प्रेमचन्द की मान्यता और आस्थाओं से प्रभावित लगते हैं।

उनकी 'पूस री रात' कहानी ग्राम्य जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। उसमें किसानों की गरीबी और सूदखोरी का प्रसंग है। कहानी में भाषा का वैभव निखार पर है लेकिन अन्त उतना प्रभावोत्पादक नहीं।

कवि श्री किशोर कल्पनाकांत कहानियाँ भी लिखते हैं। उनकी कहानियों में मानव जीवन के उतार चढ़ाव मिलते हैं। घुटन और कसमकश की चर्चा मिलती है। ये बहुत कुछ, आदर्शोन्मुख हैं। ये समस्या प्रस्तुत करते हैं उसके कारणों की सम्यक चिकित्सा करते हैं और और तदुपरान्त उनका निदान भी प्रस्तुत करते हैं। श्री कांत की कहानियों की विशेषता भी उल्लेखनीय है। वे कल्पना मिश्रित और संवेदनात्मक कहानियाँ भी लिखते हैं।

लोक कथाओं को आधार बनाकर लिखने वालों में मुरलीधर व्यास के अतिरिक्त रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत मोहनलाल पुरोहित जगदीश माथुर 'कमल' आदि उल्लेखनीय हैं।

रानी लक्ष्मीकुमारीजी राजस्थानी लोक कथाओं को सँवारने सजाने तथा उन्हें प्रकाशित करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। रानीजी के 'मांझल रात' व अन्य कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे—

१ मूमल २ हुँकारो दो सा ३ लोक कथाएँ ४ टाबरां री वातां।

'टाबरां री वातां' बाल साहित्य की पुस्तक है जिसमें सरल और सीधे सादे ढंग पर कही गई बातों में भी भाषा के मुहावरों और चटकीलेपन से एक विशिष्ट सौन्दर्य आया है। 'सावास म्हारी जूं' का एक प्रसंग देखिये—

'एक जूं ही। जूं बैठे जाती। गेलो में कमेड़ी मिली।
कमेड़ी पूछियो—जूं जूं कहां जाती ?
जूं बोली—हाथ धूंटण।
कमेड़ी पूछियो—धूंटेगी कस्यान ?
जूं बोली—चटक चटक ?
कमेड़ी पूछियो—काटैगी कस्यान ?
जूं बोली—कतर कतर।
कमेड़ी पूछियो—रांधेगी कस्यान ?
जूं बोली—सटपट सटपट।

तरुण कहानीकार श्री जगदीश माथुर 'कमल' की 'घर मैंझा घर चूंका'

कहानी राजस्थानी बात परम्परा पर आधारित है। प्रेमचन्द की शैली पर उन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं। श्री 'कमल' ने मनोवैज्ञानिक और प्रगतिशील कहानियाँ भी लिखी हैं। कथोपकथन में राजस्थानी के शब्दों और वाक्यों के सरल और सार्थक प्रयोग मिलते हैं। 'नये टेकनीक और नये प्रयोगों' की दृष्टि से भी श्री 'कमल' राजस्थानी के मनोनीत कहानीकारों में अपना विशिष्ट स्थान बनाते जा रहे हैं।

रतनलाल शास्त्री के कहानी संग्रह 'साखी के छोर' में सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाली कई कहानियाँ हैं।

'रवोही' नानूराम संस्कर्ता की १० कहानियों का संकलन है। श्री संस्कर्ता ग्रामीण जीवन के बड़े सजीव चित्र उतारते हैं। राजस्थानी राजस्थान की लोक भाषा है और राजस्थानी संस्कृति मूलतः गाँवों की ही संस्कृति है। इसलिए ग्रामीण समाज की स्थिति और वातावरण का चित्रण न्यूनाधिक रूप में, राजस्थानी के सभी कहानीकारों में मिलता है।

'रवोही' संग्रह की कहानियों में गाँव के वातावरण रहन-सहन, हँसी-मजाक आदि का विस्तृत और यथार्थ चित्रण है। ग्रामीण परिवारों की समस्याओं और मनोभावनाओं का भी इनमें अच्छा और सही चित्रण मिलता है। कवि-हृदय श्री संस्कर्ता में पात्रों की मनःस्थितियों की थाह पा लेने की भी सामर्थ्य है। उनकी भाषा आकर्षक और प्राञ्जल है।

द्विवेदीकाल की विरासत को सम्भालकर २० वीं सदी के छठे दशक की समाप्ति पर्यन्त सरस्वती की अनवरत साधना करने वाले हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार पुरोहित प्रतापनारायण ने राजस्थानी में भी कहानियाँ लिखी हैं। उनकी भाषा में जयपुर क्षेत्रीय बोली का पुट है। पुरोहितजी की एक लघु कथा 'हँसोल्या काई' का प्रसंग देखिये।—

'जय रामजी की। बात की बात और कुरामात की कुरामात। बकरी ने चर गया बोरड़ी का पात। बोरड़ी के काँटो तीन हाथ लम्बो भीटी धरती पर तीन तलाव। एक में कादो एक में सूखा जो एक में पाणी ही कोने। पाणी ही कोने ऊमें उतरया तीन ठेक। एक गुम गया—एक टूट गयो जो एक को पतो ही कोने। पतो ही कोने जेंका पूरया तीन कामण एक भूल गयो एक कढ़ गयो, जो एक आयो ही कोने।"

पुरोहितजी की हास्य कथा लोक कथाओं की शैली और टेक्नीक पर आधारित है। लोक मान्यता के अनुसार जो बात जितनी विचित्र हो वह उतनी

ही मनोरंजक होती है। उसकी प्रभावोत्पादकता की कसौटी यथार्थ नहीं है।

डा. कन्हैयालाल सहल ने 'नटो तो कहो मत' में लोक-वार्ताओं को सरल और सरस रूप दिया है। श्रीलाल मिश्र ने भी लोक-कथाओं पर आधारित व स्वतन्त्र भाव-वस्तु की कई कहानियां लिखी हैं।

श्री कृष्णगोपाल शर्मा श्री जयनारायण व्यास और श्री मुरलीधर व्यास राजस्थान की राजनीति के उन खिलाड़ियों में से हैं जो राजस्थानी संस्कृति और साहित्य के प्रति अत्यधिक आस्थाशील हैं। तीनों ही राजस्थानी के श्रेष्ठ लेखक हैं।

'प्रीत री रीत कुण जाणी' नाम से श्री शर्मा की एक लघु-कथा का उदाहरण प्रस्तुत है—

पंडतजी कथा कर, सिवर रे आगे आछया बजार, सिराणै रामायण री पोथी खोल मोर जोर मूं पढे वृहा-पड़दा पुणाई-आणंद सुणन आवे भगवान रा श्रीराधन कृष्ण ने जोसो मी जाणे।

सरल और सरस अभिव्यक्ति में नये चुने शब्दों और मुहावरेदार छोटे-छोटे वाक्यों में श्री शर्मा अपनी बात कह देते हैं।

राजस्थानी के गीतकार श्री रामदेव आचार्य एक प्रतिभाशाली कहानी लेखक भी हैं। उन्होंने भी लोक-कथाओं के आधार पर कई कहानियां लिखी हैं।

श्री दलपतदास ने 'पंचतन्त्र' री कथ्यां' नाम से पंचतन्त्र की विश्व-प्रसिद्ध कथाओं को राजस्थानी में अनुवादित किया है।

'आभै पटकी' उपन्यास के रचयिता श्रीलाल नथमल जोशी राजस्थानी के कुशल कहानीकार हैं। उनकी कहानियां में यथार्थ और कल्पना-दोनों अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ उतरते हैं। उनकी भाषा मुहावरेदार होती है।

श्री जोशी ने कई सुन्दर रेखाचित्र भी लिखे हैं। 'गुलजारीमल' का एक उदाहरण देखिये—

'मर्केंटाइल बोली मगराज मीन रो कोट। पगां में देसी पगरखी कोई मोचा री माथै ऊपर टीप टाप केसरियो पाग काँधे ऊपर गामछो जिको चूला र मूं को पोछू पूंछण में आवो आवै। कद सवापाँच बीस-बीस मठीनो मथाळै में कुस्ती सूं हुयोड़ो दूबे जिसो। मूंछयां किड़कावणी जेरै ऊपर पुखक-से है गुलजारीमलजी—बीकानेर रै बिनसीसर रा एक सिटर।

'घमड़का' उनके ११ राजस्थानी रेखा-चित्रों का संग्रह है, जिसे राजस्थानी साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

सुश्री उमाप्रभि और बैजनाथ पँवार ने राजस्थानी में चुटकुले लिखे हैं। श्री भंवरलाल माहटा ने भी कई सुन्दर रेखाचित्र लिखे हैं।

कविराव मोहनसिंह डिंगल पिंगल और राजस्थानी, सभी में अच्छी रचना करते हैं। उनकी कहानियाँ सामान्यतया उपदेशात्मक होती हैं। 'नाक नीं कादृयो जाय' 'जैर री पुड़की थाने मी त्यार' तथा 'घर-बार म्यामा करणा पण बेटी स्यामी नीं करणी' आदि कहानियाँ मनोरंजन के साथ-साथ संदेश भी देती हैं। दृष्टान्तों के सहारे नसीहत देने में कविरावजी अधिक समर्थ हैं। 'जैर री पुड़की थाने मी त्यार' कहानी में ठकुराई के लालच और उसकी प्राप्ति के लिए किये जाने वाले षडयन्त्रों की चर्चा है।

अन्य कहानीकारों में उदयवीर शर्मा मीठाराम वर्मा नारायणसिंह भाटी विजयदान देथा मोतीसिंह राठौड़ और बलदान चारण के नाम उल्लेखनीय हैं।

राजस्थानी का आधुनिक-कथा साहित्य उसके लोक साहित्य से बड़ा प्रभावित है। यह राजस्थानी के पुनरुत्थान का काल है इसलिए प्राचीन साहित्य और लोक-साहित्य का इस काल में विशेष आदर रहना स्वाभाविक है लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि नयी राजस्थानी कहानी मात्र अतीत की ओर ही उन्मुख है। नये यथार्थ और भविष्य की सम्भावनाओं के प्रति भी राजस्थानी का कथाकार कम जागरूक नहीं। उसकी रचनाओं में कथा साहित्य की नयी शैलियों और अभिव्यक्ति-धाराओं के श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं जिसकी प्रेरणा प्रांत की जलवायु और भाषा के संस्कारों से पोषित है उस साहित्यकार की इस साहित्य में बड़ी आस्था है और उसकी सम्भावनाओं का क्षेत्र भी दुर्बल नहीं है।

उपन्यास

उपन्यास रचना के क्षेत्र में राजस्थानी साहित्य अत्यधिक पिछड़ा हुआ है। गिनाने के नाम पर दो तीन उपन्यासों की रचना अवश्य हुई है लेकिन सृजन के इस क्षेत्र की प्रगति अत्यन्त असन्तोष-जनक है, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

राजस्थानी के उपासक श्री शिवचन्द्र भरतिया का 'कनक सुन्दर' राजस्थानी का पहला उपन्यास है। इस उपन्यास के पूर्वार्द्ध का प्रकाशन सं० १९७२ में हुआ और उत्तरार्द्ध सम्भवतः लिखा ही नहीं गया। इसमें मारवाड़ी जीवन का सुन्दर चित्र अङ्कित किया गया है। समाज-सुधार ही इस उपन्यास का प्रेरक भाव है। नाटकों की ही भाँति श्री भरतिया के इस उपन्यास की भाषा में भी प्रवाह एवं शक्ति है जिसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

दोपहर दिन को वगत बारखा काली लू बाल रही थी। हवा का जोर धू-धू मठी की उठी में उड़-उड़ कर धोरा नवा-नवा टीबा हो रह्या थे। मुंह लेने कर सामने चाल्यो मुश्कल थी। लू कपड़ा माहे बड़ कर सारा शरीर ने झपवाय रही थी। धूर इसी जोर की पड़ रही थी के अभी ऊपर पग बैरों मुश्कल थो। रास्ता माहे दूर-दूर रूंख ही भाड़ को नाम नहीं। बापु उड़कर नवा-नवा नवा टीबा होणे सू रस्ता को ठिकाणो नहीं। आदमी तो दूर रस्ता माहे कोई जीव-जिनावर को भी दरसण नहीं।

'मनोजी मान' श्री बद्रीप्रसाद साकरिया रचित उपन्यास है जिसे राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने प्रकाशित किया है।

उपन्यास का कथानक 'तोगा री तरवार' ऐतिहासिक लोक कथा पर आधारित है। वीरवर तोगा राठौर अपना सिर उतार कर जूझार हुआ और उसकी पति-व्रता पत्नी भटियानी सती हुई। दोनों आदर्श-चरित्र मुगल-कालीन दरबारी रस्मो-रिवाज और राजपूत जाति के अतीत गौरव का चित्रण बड़ी खूबी से हुआ है। भाषा पात्रों के अनुकूल है। मुस्लिम उर्दू बोलते हैं और राजपूत राजस्थानी।

मुगलकालीन दरबारी प्रथाएँ—चौबदार द्वारा बादशाह के आगमन की सूचना जोधपुर दरबार में जसवंसिंह के आने की सूचना महाराणा का पेश गकीम की मनुहार बीड़ा रखना बरात की सवारी, जनवासा तोगा की सवारी आदि तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत करती है।[1]

तीसरे परिच्छेद में भाटी सरदार का अपनी पत्नी एवं पुत्री से वार्तालाप ओजस्वी और प्रभावपूर्ण भाषा में है।

पाँचवें परिच्छेद में प्रथम मिलन में भटियानी के उदात्त विचार देखिये—

'आप उमराव सरदार ने बीर साहब आपणो बड़ा रावल सारू आछ महीना री मुहत तो ले आवेला। पिण उणा रो विचार नहीं दिख्यो के आपणा दोनूं जिणा माहे सू कठा पुरत पहली कोई अवसर होग्यो तो भी ठिकाणे आयोड़ो काम पाछो की कर बणेला।

तोगा की वीर-माता अपने पुत्र और पुत्रवधु को मरणासीर्ष में निमन्त्रण करने जाने के लिए विदा देते समय अपने को धन्य समझती है।

११ वें परिच्छेद में अफसरी का अलग होना और तोगा का तकरीर दिखाई

---

१ वरदा वर्ष २ अङ्क ३—श्रीलाल मिश्र की समीक्षा।

आगे

देना तथा उसका कथन मात्र के लिए अलौकिक है, पर कथा का आधार चूँकि लोक-कथा है अतः यह विचित्रता भी अधिक नहीं खलती।

राजपूत संस्कृति के उज्ज्वलतम पहलू 'पोषे भाम' में मिलते हैं।[1] तत्कालीन संस्कृति का उद्घाटन करने के नाते एवं तोगा जैसे वीर के साहस प्रतिज्ञा-पालन, आत्म-विश्वास और अद्भुत शौर्य तथा भटियाणी के पति-व्रत त्याग बलिदान और संयम के आदर्श इस उपन्यास में पाठकों के समक्ष चित्रित किये गये हैं।

'आभै पटकी' श्रीलाल नथमल जोशी द्वारा रचित उपन्यास है। इसे भी सादूळ राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने ही प्रकाशित किया है। कुछ लोगों ने 'आभै पटकी' को ही राजस्थानी का प्रथम उपन्यास कहा है।

इस उपन्यास का आधार एक दुखिया की कहानी है। किसना अपने पिता और भाई भोजाई के लाड़-प्यार में पलकर बड़ी होती है। उसका विवाह धनी परिवार में होता है लेकिन वह शीघ्र ही विधवा हो जाती है। पति हरिचन्द्र विमान दुर्घटना का शिकार हो जाता है। ससुराल व समाज के लोग उसे पतित करना चाहते हैं। वह अपने देवर मोहन को जो बम्बई में डाक्टरी करता है, परिस्थिति से अवगत कराती है। तत्पश्चात् समाज-सुधार सभा के मन्त्री किशनगोपाल से किसना का विवाह निश्चित् कर दिया जाता है।

पंचायत विवाह करने कराने वालों व उनके समर्थकों को जाति से बहिष्कृत कर देती है। विवाह के निश्चित दिन किशनगोपाल को १०५ डिग्री बुखार हो जाता है अतः विवाह स्थगित हो जाता है। उधर मोहन की पत्नी का निधन हो जाता है। अतः परिवर्तित परिस्थिति में किसना का विवाह मोहन के साथ होता है। दोनों आनन्द से रहते हैं और मोहन के पिता के नाम पर 'रामचन्द्र धर्मार्थ चिकित्सालय' खोलते हैं। किसना नारीशाला खोलकर सेवा करती है।

उपन्यास सुन्दर बन पड़ा है। भाषा सरल सरस प्रवाहपूर्ण और मुहावरेदार है।[2]

साहित्य का इतिहास

आधुनिक काल में राजस्थानी भाषा और साहित्य के इतिहास निर्माण की दिशा में भी प्रयत्न हुए हैं। राजस्थान साहित्य अकादमी के सभापति और राजस्थानी के विद्वान डा. मोतीलाल मेनारिया ने इस दिशा में सराहनीय

1 वरदा वर्ष २ अङ्क १—श्रीलाल मिश्र की समीक्षा।
2. उदयवीर शर्मा की समीक्षा।

योगदान दिया है। उनके तीन ग्रन्थ १ राजस्थानी भाषा और साहित्य २ राजस्थान का पिंगल साहित्य तथा तीसरा ३ डिंगल में वीर रस— राजस्थानी साहित्य पर व्यापक प्रकाश डालते हैं। राजस्थान के कई अज्ञात किन्तु समर्थ लेखकों को सर्व प्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय डा० मेनारिया को है। राजस्थान में डिंगल की ही नहीं पिंगल साहित्य की भी विपुल मात्रा में रचना की है। डिंगल और पिंगल दोनों धाराओं के ज्ञात अज्ञात लेखकों एवं कवियों का परिचय तथा काल और विकासक्रम के अनुरूप उन्हें ऐतिहासिक व्यवस्था में संवारकर डा० मेनारिया ने राजस्थानी की बड़ी सेवा की है। राजस्थानी भाषान्तर्गत विभिन्न बोलियों का वर्गीकरण अन्य विद्वानों की मान्यता के सन्दर्भ में राजस्थानी भाषा की प्रतिष्ठा प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल अपभ्रंश की परम्परा रचित साहित्य का मूल्यांकन तथा रचनाकारों के इतिहास-निर्माण में डा० मेनारिया ने सर्वाधिक योग दिया है।

साहित्य के आचार्य प्रो० नरोत्तमदास स्वामी की 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पुस्तक राजस्थानी भाषा का सांगोपांग सम्पूर्ण अध्ययन और राजस्थानी के साहित्य की भरपूर जानकारी प्रस्तुत करती है। स्वामीजी ने राजस्थानी साहित्य-परम्परा तथा उसकी प्र रक शक्तियों का विस्तार से परिचय दिया है और उसका मूल्यांकन भी किया है। राजस्थानी के नये लेखकों की जो पीढ़ी इन दिनों साहित्य रचना कर रही है उसे स्वामीजी का पूरा सहयोग और मार्ग दर्शन मिलता है। राजस्थानी साहित्य से सम्बन्धित शायद ही कोई ऐसी प्रवृत्ति हो जिसकी जानकारी उन्हें न हो।

बीकानेर के ही अगरचन्द नाहटा ने भी राजस्थानी की बड़ी सेवा की है और आज भी कर रहे हैं। भाषा और साहित्य का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति में जिस अध्यवसाय सूझ-बूझ और संतुलन की आवश्यकता होती है वह भी नाहटा में है। आप द्वारा संरक्षित राजस्थानी के विशाल पुस्तक भण्डार से राजस्थानी साहित्य का बड़े से बड़ा और प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है। प्राचीन साहित्य और उसके मूल्यों की जितनी जानकारी नाहटाजी को है उतनी अन्य किसी को नहीं। राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य से सम्बन्धित कोई भी कार्य नाहटा जी स मिले बिना पूरा नहीं होता।

सैकड़ों लेखों में नाहटाजी ने राजस्थानी साहित्य का प्रामाणिक परिचय दिया है और साहित्य क्षेत्र की कई भ्रांतियों का निराकरण करके उसकी सम्भावनाओं का द्वार खोला है। नाहटाजी ने अब तक जो भी और जितने भी लेख लिखे हैं वे सभी राजस्थानी साहित्य के इतिहास के बिखरे हुए

दस्तावेज़

महत्वपूर्ण पृष्ठ हैं । राजस्थानी की जो सेवा उन्होंने की है उसे भुलाया नहीं जा सकता ।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि साहित्य में किया गया शोध कार्य ही उसका इतिहास बनाता है । गत २० वर्षों का हमारा विकास इस बात का साक्षी है कि मात्र राजस्थानी के लिए ही नहीं अन्य भाषाओं और उनमें रचित साहित्य के लिए भी जिन समस्याओं या धाराओं पर शोध कार्य किया जाता रहा है उसमें राजस्थान के ग्रंथ भण्डारों ने ही सर्वाधिक योगदान किया है ।

राजस्थानी को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने में काफ़ी समय लगा है इसलिए कहा जा सकता है कि राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास तो अब लिखा जा रहा है । साहित्य की मनोवृत्यादित बेशुमार प्रवृत्तियों का समावेश हुए बिना राजस्थानी का इतिहास अभी अपूर्ण ही कहा जायगा । इस ओर निरन्तर प्रयत्न हो रहे हैं ।

शोध संस्थान चौपासनी से प्रकाशित 'परम्परा का मोरा हुटवा' भाग भारतीय स्वाधीनता संग्राम के समकालीन राजस्थानी कवियों और उनके सृजन की पर्याप्त जानकारी प्रस्तुत करता है ।

अर्वाचीन राजस्थानी गद्य' और 'अर्वाचीन राजस्थानी काव्य' शीर्षकों से श्रीलाल मिश्र ने आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों को संजोया है और उनका मूल्यांकन भी किया है ।

श्री मनोहर शर्मा ने साहित्य के इतिहास के कई पृष्ठ लिखे हैं जिन्हें अनेक लेखों में देखा जा सकता है ।

इतिहासज्ञ डा० दशरथ शर्मा ने 'पृथ्वीराज रासो' से सम्बन्धित विवाद में अपनी अनुसन्धानपूर्ण मान्यताएँ स्थापित की हैं ।

मु० देवीप्रसाद शर्मा ने इससे काफ़ी पहले ही राजस्थान के लेखकों की सूचियाँ बनाई थीं ।

शोध संस्थान—राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर ने 'राजस्थान में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के चार भागों में सैकड़ों अज्ञात ग्रन्थों की जानकारी दी है । हणूतसिंह ने 'डिंगल में नारी' तथा पुरुषोत्तम मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और उसकी मान्यता का प्रश्न' पुस्तकों में भाषा और साहित्य की ऐतिहासिक व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया है ।

राजस्थानी साहित्य का इतिहास वर्तमान स्थिति में मूलत दोनों अन्योन्याश्रित हैं इसलिए शोध कार्य परिप्रेक्ष्य में इसकी विस्तृत चर्चा की जायगी ।

तिरामने

व्याकरण–कोष–भाषाविज्ञान

राजवाड़ों में बिखरी हुई विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों को भाषा का एकीकृत रूप देने भाषा की व्याकरण तैयार करने तथा डिंगल और राजस्थानी के शब्द-कोषों के निर्माण का कार्य भी इस काल में हुआ है जिससे इस भाषा और साहित्य के विकास में पर्याप्त सहायता मिली है ।

स्व० श्री रामकर्ण आसोपा इस क्षेत्र में भी अग्रणी हैं । 'मारवाड़ी-व्याकरण' नाम से आपने ही सर्व प्रथम राजस्थानी व्याकरण लिखा जो सं० १९९१ में प्रकाशित हुआ । श्री आसोपाजी ने मारवाड़ी की कई प्रारम्भिक पुस्तकें भी लिखीं तथा राजस्थानी डिंगल के दो कोष तैयार किये । पहला बृहद् कोष ६० ०० शब्दों का है जिसमें शब्दों की उत्पत्ति तथा हिन्दी व अंग्रेजी अर्थ है । दूसरा २० ० शब्दों का संक्षिप्त डिंगल कोष तैयार किया ।

गत सन् १८७२-७५-७९ में प्रकाशित बीम्स के 'आधुनिक भारतीय-भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण' में राजस्थानी का व्याकरण भी दिया गया है ।

सन् १८७७ में डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने 'विल्सन भाषा वैज्ञानिक भाषणमाला' में मेवाड़ी और मारवाड़ी की कुछ विशेषताओं का भी उल्लेख किया ।

सन् १८७८ में डा० केलॉग ने भी राजस्थानी के व्याकरण पर प्रकाश डाला है ।

इसी संदर्भ में डा० टैसीटोरी और डा ग्रियर्सन का नाम भी उल्लेखनीय है । डा ग्रियर्सन ने सन् १९ ७ व १९ ८ में Linguistic Survey of India की दो जिल्दों में राजस्थानी का वर्णनात्मक व्याकरण प्रस्तुत किया है । इसमें ऐतिहासिक परम्परा की कमी थी । भाषा के विकास की रेखा धूमिल एवं अस्पष्ट थी । डा० टैसीटोरी ने इस कमी को पूरा किया ।

पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के द्वारा डा० टैसीटोरी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की उस खोई हुई कड़ी के पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया है जिसके बिना किसी आधुनिक भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण लिखा ही नहीं जा सकता । भाषा विज्ञान सम्बन्धी आपके निम्न दो लेखों का उल्लेख आवश्यक है—

1 "Origin of the dative and genetive and dative post-position in Gujarati and Marwari (1913)

2 'The wide sound of 'A' and 'O' in Marwari and Gujarati" (Ind Ant Sep 1918)

डा० टेसीटोरी का लिखा प्राचीन राजस्थानी का व्याकरण इंडियन एंटिक्वेरी में प्रकाशित हुआ था। उसका हिन्दी अनुवाद 'पुरानी राजस्थानी' नाम से काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।

डा० ग्रियर्सन की पुस्तक Linguistic Survey of India' के नवें खण्ड के द्वितीय भाग में राजस्थानी और उसकी विभिन्न बोलियों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मैकालिस्टर ने ढूंढाड़ (जयपुर राज्य) की बोलियों का सर्वे करके उनका अध्ययन प्रस्तुत किया।

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा० सुनितिकुमार चाटुर्ज्या ने भी राजस्थानी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'राजस्थानी भाषा'[1] पुस्तक में उनके राजस्थानी विषयक विद्वतापूर्ण भाषणों का संकलन है।

'राजस्थानी उत्तर भारत की वर्तमान देश-भाषाओं में सबसे प्राचीन भाषा है। उसे अपभ्रंश की जेठी बेटी कह सकते हैं। अपभ्रंश के अधिकांश साहित्य की रचना इसी प्रदेश में हुई।'[2]

भाषा के गम्भीर अध्येता विश्लेषक और अधिकारी विद्वान प्रो० नरोत्तम दास स्वामी की एक भाषा-वैज्ञानिक के रूप में महती प्रतिष्ठा है। आप राजस्थानी हिन्दी संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश गुजराती बंगला मराठी, अंग्रेजी रूसी और जर्मन आदि विश्व की कई भाषाओं के जानकार हैं। साहित्य की स्नातकोत्तर-कक्षाओं के ही नहीं साहित्य के शोध-स्नातकों के भी आप मार्ग दर्शक हैं। व्याकरण भाषा-विज्ञान अलङ्कार शास्त्र और लोक-संस्कृति आपके अत्यधिक प्रिय विषय हैं। आपकी शैली में स्वच्छता और स्पष्टता है जो जटिलता और आडम्बर से कोसों दूर है। साहित्य-संसार की प्राचीन से लेकर आधुनिकतम धाराओं तक आपकी समान गति है। राजस्थानी-भाषा और उसके व्याकरण पर आपकी निम्न दो पुस्तकें सर्वाधिक मान्य हैं—

१ राजस्थानी-भाषा और साहित्य—इसमें राजस्थानी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

---

१ प्रकाशक—साहित्य संस्थान—राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर।

२. प्रो नरोत्तमदास स्वामी।

२ संक्षिप्त राजस्थानी व्याकरण—इसमें राजस्थानी-भाषा का व्याकरण संक्षेप में दिया गया है।

राजस्थानी के भाषा वैज्ञानिक स्वरूप उसके महत्व तथा उसकी व्याकरण सम्बन्धी अनेक गुत्थियों के समाधान के लिए स्वामीजी ने समय समय पर कई लेख भी लिखे हैं जिनसे राजस्थानी की भाषा सम्बन्धी मान्यता को बड़ा बल मिला है।

श्री सीताराम लालस इन दिनों शोध संस्थान चौपासनी द्वारा प्रकाशित किये जा रहे 'बृहत् राजस्थानी कोष' का सम्पादन कर रहे हैं। यह कोष लगभग एक लाख शब्दों की जानकारी प्रस्तुत करेगा। श्री लालस की यह एक महत्वपूर्ण देन होगी।

श्री सीताराम लालस ने 'राजस्थानी व्याकरण' भी तैयार की है जो आज राजस्थानी सीखने वाले कई छात्रों को सहायता पहुँचा रही है।

शोध संस्थान चौपासनी ने इससे पूर्व भी 'परम्परा' त्रैमासिक के विशेषांक के रूप में प्राचीन शैली के पद्यबद्ध कोषों का संग्रह प्रकाशित किया है। इस कोष के सम्पादक श्री नारायणसिंह भाटी हैं।

श्री बुलाराम जोशी द्वारा सम्पादित 'राजस्थानी शब्दकोष' के कुछ पृष्ठ 'वरदा' में प्रकाशित हुए हैं। इन शब्दों का प्रचार क्षेत्र शेखावाटी तक ही सीमित है।

सादुल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर ने भी कई वर्ष पहले श्री नरोत्तमदास स्वामी के सम्पादकत्व में राजस्थानी शब्द कोष की एक विराट योजना बनाई थी जिसका कुछ क्रियात्मक रूप राजस्थान भारती के पृष्ठों में देखने को मिलता है। यह संस्था भिन्न-भिन्न ग्रन्थों और बोल-चाल के अनेक अर्थों वाले शब्दों का वर्गीकरण वर्ण मालानुक्रम संस्कृत-प्राकृत अपभ्रंश-देशी-फारसी और अरबी के समानार्थी शब्द शब्दों की उत्पत्ति निर्देशक उत्पत्ति व्याकरण हिन्दी में अर्थ प्रान्तिक संकेत विशेषण व क्रिया के रूप, अर्थों सहित मुहावरे व्याख्या एवं विवरण से सम्पूर्ण बृहद् कोष का निर्माण कर रही है। कोष के लिए तीन लाख शब्दों का संग्रह और उनमें से ६०–७ हजार शब्दों के एकीकरण का काम कर लिया गया है। श्री बद्रीप्रसाद साकरिया द्वारा सम्पादित कुछ शब्दों का प्रकाशन भी देखने को मिला है। इस समय इसका कार्य श्री अगरचन्द नाहटा के निरीक्षण में श्री बद्रीप्रसाद साकरिया कर रहे हैं।

हाड़ोती क्षेत्र के श्री नाथूलाल पाठक 'हाड़ोती शब्दकोष' और 'हाड़ोती

व्याकरण

व्याकरण' पुस्तकें लिख रहे हैं, साथ ही एक पारिभाषिक शब्दकोष भी योजनान्तर्गत है। क्षेत्रीय आधार पर किये जा रहे इन ठोस कार्यों से राजस्थानी को बड़ा बल मिलेगा।

महाकवि सूर्यमल्ल के समय के तुरन्त पश्चात् ही इस दिशा में एक और प्रयत्न याद आता है। कविराजा मुरारीदान जी ने भी एक डिंगलकोष तैयार किया था।

सर शुकदेवप्रसादजी को कश्मीरी होते हुए भी राजस्थानी भाषा से बड़ा प्यार था। इन्होंने भी एक 'मारवाड़ी व्याकरण' बनवायी थी। उन्होंने कुछ अन्य पुस्तकें भी लिखीं—जैसे—

१ बातचीत करण रा नुमना। २ मारवाड़ी सू हिन्दी में।

शोध-कार्य एवं समालोचना

राजस्थान के राजा-महाराजा और सामन्त कलाकारों और कवियों के आश्रयदाता रहे हैं। एक हाथ में वीणा—दूसरे में तलवार यही इस मरुभारती का शृंगार रहा है। अतः राजस्थान के कई राज-भण्डारों में प्राचीन साहित्य की बहुमूल्य पोथियाँ मिली हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान के मन्दिरों में विशेषतः जैन मन्दिरों मठों और व्यक्तिगत पुस्तक-भण्डारों में सुरक्षित अथाह साहित्य-सम्पदा की भी अब खोज होने लगी है और राजस्थानी में साहित्य के शोधकर्त्ताओं का मार्ग प्रशस्त होता जा रहा है।

इतिहासज्ञ कर्नल टाड और रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इतिहासकारों का दायित्व निभाने के साथ-साथ राजस्थान के साहित्य की भी चर्चा की है। वस्तुतः राजस्थान के इतिहास की जानकारी इस प्रान्त में रचित साहित्य और लोक-साहित्य के बिना मिल भी नहीं सकती।

हिन्दी साहित्य की पूर्व परम्परा में अपभ्रंश का जो महत्व स्वीकारा गया है, उस अपभ्रंश का सबसे अधिक साहित्य राजस्थान में ही रचा गया है।

राजस्थानी के इस आधुनिक काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस समय राजस्थानी भाषा की मान्यता और उसमें रचित साहित्य की आवश्यकता को एक मिशनरी भावना के रूप में अंगीकार किया गया। फलतः राजस्थान की लोक-संस्कृति लोक साहित्य और प्राचीन साहित्य की शोध खोज संरक्षण मूल्यांकन और प्रकाशन की लगन पिछले वर्षों में बड़े वेग से बढ़े हैं। इतना अवश्य है कि इस आस्थावान मान्यता के कारण अनुसंधान कार्य का तो व्यापक विकास और विस्तार हुआ लेकिन सही मूल्यांकन और

संतुलित समालोचना का पक्ष अपेक्षाकृत दुर्बल रहा। यह सम्भवतः इसीलिए भी कि वस्तु को सर्व प्रथम अपने समग्र-रूप में प्रस्तुत करना होता है। चयन काट छाँट और आलोचना प्रत्यालोचना की सीढ़ी दूसरी है।

यहाँ यह स्वीकार करना पड़ता है कि राजस्थानी के लेखकों पाठकों शोध कर्ताओं और आलोचकों-सभी में इस मान्यता के कीटाणु बुरी तरह से चिपके हुए हैं कि राजस्थानी में जो लिखा गया है या लिखा जा रहा है वह सभी श्रेष्ठ साहित्य है। अब राजस्थानी के समर्थकों को अपने अस्तित्व से अधिक यह जिज्ञासा रखनी चाहिए कि राजस्थानी में लिखा गया साहित्य कितना श्रेष्ठ है और उसका मूल्य क्या है?

राजस्थानी में शोध-कार्य को गति देने उसे विकसित करने तथा राज स्थानी के प्रति शोधकर्ताओं की रुचि जागृत करने वालों में सबश्री रामकर्ण आसोपा डा० रामसिंह नरोत्तमदास स्वामी अगरचन्द नाहटा डा० मोतीलाल मेनारिया मुनि जिनविजयजी और डा० कन्हैयालाल सहल के नाम सर्व प्रथम उल्लेखनीय हैं।

महामहोपाध्याय पं० रामकर्ण आसोपा ने हिन्दी और राजस्थानी की अविस्मरणीय सेवायें की हैं। नाहटाजी के एक लेख से पता चलता है कि आसोपाजी ने १२ वर्ष की अल्पायु में ही 'सारस्वत पूर्वार्द्ध' 'चन्द्रिका उत्तरार्द्ध' 'श्रीमद्भागवत' 'रघुवंश' 'माघ-काव्य' और 'ज्योतिष शास्त्र' का अध्ययन कर लिया था। 'मार्द्दवर' और 'माधव निदान' ग्रन्थ आपने हाथ से लिखकर पढ़े। 'श्रीमद्भागवत' का सर्व प्रथम हिन्दी अनुवाद करने का श्रेय भी आसोपाजी को ही है। आपने तुलसीकृत रामायण की खड़ी बोली में टीका भी की।

संस्कृत हिन्दी राजस्थानी व डिंगल सभी भाषाओं की आपने बड़ी सेवा की। सं० १९७६ में 'रायल एशियाटिक सोसायटी' ने डिंगल गीतों का संग्रह किया। आसोपाजी तत्सम्बन्धित समिति के मन्त्री थे। डिंगल साहित्य के संग्रहकर्ता के रूप में भी आपका नाम सर्व प्रथम आता है। डा० टेसीटोरी को आपने ६ मास में राजस्थानी का प्रारम्भिक ज्ञान कराया। उन्हें राजस्थानी साहित्य का पुनःप्रतिष्ठापक कहा जाता है।

पट्टों-परवानों प्राचीन लिपियों और बहियां पुरानी हस्तलिखित पोथियों को पढ़ने में आप कुशल थे। इसी विलक्षण-पाण्डित्य से प्रभावित होकर तत्कालीन विदेशी शासन ने आपको महामहोपाध्याय की पदवी से विभूषित किया।

आसोपाजी ने जातियों के कई इतिहास लिखे हैं तथा राजस्थानी के साहित्य और इतिहास सम्बन्धी कई ग्रन्थों का सम्पादन किया है। श्रुति-स्मृति और

मुद्रित ग्रन्थों को वे इतिहास की एक कड़ी समझते थे और इसी कारण उनकी किसी एक ग्रन्थ पर आस्था नहीं थी। वे राजस्थानी-साहित्य संस्कृति और इतिहास के युग प्रवर्तक पुरुष थे।

निज के प्रयत्नों और मित्रों के सहयोग से मासोपाजी राजस्थानी-साहित्य और लोक-साहित्य के कई बहुमूल्य ग्रन्थों को प्रकाश में लाये यथा—

१ ढोला मारू रा दूहा २ वेली किसन रुकमणी री ३ राजस्थानी वातां ४ राजस्थान के लोक गीत ५ राजस्थानी लोक गीत ६ जटमल ग्रन्थावली ७ बीसलदेव रासो।

अप्रकाशित ग्रन्थों में—

१ राव जैतसी रो छन्द २ ऐतिहासिक गीत ३ चारणी गीत ४ ज्योत्स्ना (काव्य) ५ मेघमाला (काव्य) ६ कानन कुसुमाञ्जलि (काव्य) ७ इन्द्रचाप (काव्य) ८ स्वर्गागम (निबन्ध संग्रह) ९ मित्रों के पत्र।

श्री अगरचन्द नाहटा के जीवन की सबसे बड़ी साधना राजस्थानी की सेवा ही है। राजस्थानी-साहित्य और लोक-साहित्य के विविध प्रसङ्गों और प्रवृत्तियों पर आप इन पंक्तियों के लिखने तक १२०० से भी अधिक लेख लिख चुके हैं। उन्होंने २० हजार हस्तलिखित प्रतियों का परिशीलन और अधिक हस्तलिखित प्रतियों का निरीक्षण कर लिया है। ३० हजार से भी अधिक हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची तैयार करके आपने कई महत्वपूर्ण-धाराओं के साहित्य का पता लगाया है।

डा० प्रेमनारायण टण्डन और अन्य कई विद्वानों ने इस मान्यता को व्यक्त किया है कि १५ वीं १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में राजस्थानी गद्य-साहित्य का महत्वपूर्ण अङ्ग जैन धर्म सम्बन्धी रचनाएँ हैं। सम्बन्धित शताब्दियों तथा इससे पृथक कालों में भी रचित जैन-साहित्य की खोज करने तथा उसे शोध कर्ताओं के समक्ष लाने का श्रेय श्री नाहटाजी को प्राप्त है। जैन-साहित्य के सम्बन्ध में उनकी विलक्षण जानकारी है और उन्होंने अपने सैकड़ों लेखों में यह प्रमाणित किया है कि राजस्थानी-साहित्य तथा उसकी परम्परा को जैन साहित्य की कितनी महत्वपूर्ण देन है। डिंगल और राजस्थानी साहित्य तथा लोक-साहित्य की यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री का एकत्रित करके और उसे शोध-कर्ताओं के बीच प्रतिष्ठित करके उन्होंने साहित्य का पुनरुद्धार किया है। प्रामाणिक विद्या की दृष्टि से सामान्य सी स्कूली शिक्षा प्राप्त श्री नाहटा भारत-भर के विश्व-विद्यालयों के शोध-स्नातकों के पथ-दृष्टा रहे हैं।

निरधारमें

साहित्य-शास्त्र भाषा-विज्ञान और व्याकरण के पण्डित साहित्योपासक प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी का राजस्थानी-साहित्य के प्रति अगाध ममत्व है। राजस्थानी को भाषा के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने उसके भाषा वैज्ञानिक अस्तित्व को प्रमाणित करने तथा उसमें रचित साहित्य को सम्पादित करने और प्रकाशित करवाने में स्वामीजी ने जीवन के सर्वाधिक बहुमूल्य क्षणों की साधना अर्पित की है। वे काव्य की आत्मा के कुशल पारखी हैं। एक उदार किन्तु संतुलित सामर्थ्य के साहित्यवेत्ता भी स्वामीजी ने राजस्थान और राजस्थानी में शोध कार्य की प्रवृत्ति को बड़ा बल पहुँचाया है। साहित्य के उच्च शिक्षा प्राप्त छात्रों और प्रांत के नवोदित लेखकों में राजस्थानी साहित्य के प्रति अनुराग जगाने वाले स्वामीजी गत कई वर्षों से विश्व-विद्यालय के शोध-स्नातकों के 'गाइड' हैं। विशेषतः राजस्थानी-डिंगल-गुजराती हिन्दी और अपभ्रंश भाषाओं में रचित साहित्य एवं तत्सम्बन्धी शोध-पूर्ण जानकारी के लिए उन्हें विश्वसनीय प्रामाणिक अधिकारी का सम्मान प्राप्त है। राजस्थानी की नयी सृजन-धाराओं और लेखकों को उनका मार्ग-दर्शन और संरक्षण प्राप्त है।

स्वामीजी के अब तक २०—२२ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, लगभग इतने ही अप्रकाशित हैं। चन्द बरदाई से लेकर महादेवी तक और अनंतर भी साहित्य की शायद ही कोई प्रवृत्ति हो जिसकी जानकारी उन्हें न हो।

उनकी कुछ पुस्तकें निम्न हैं:—

१ राजस्थान रा दूहा २ राजस्थान के लोकगीत ३ राजस्थान के ग्रामगीत ४ ढोला मारू रा दोहा ५ राजस्थानी भाषा और साहित्य ६ मीरां मंदाकिनी ७ सूर समीक्षा ८ सूर साहित्य सुधा ९. तुलसी सुधा १० मधुमालती ११ सरल अलंकार १२ अलंकार परिचय १३ स्वर्ण महोत्सव पाठमाला १४ हिन्दी पद्य पारिजात १५ हिन्दी पद्य साहित्य का इतिहास १६ कबीरदास १७ वेलिक्रिसन १८ राजिया रा दूहा १९. अपभ्रंश पाठावली २० राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा २१ शोध और गवेषणा सम्बन्धी सैकड़ों लेख।

'राजस्थान रा दूहा' पर उन्हें साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 'मानसिंह पुरस्कार' से सम्मानित किया है।

इटली के स्व० डा० टेसीटोरी की भारतीय भाषाओं में बड़ी रुचि थी। उन्हें अंग्रेजी लैटिन ग्रीक जर्मन आदि के साथ साथ भारतीय भाषाओं-संस्कृत प्राकृत नयी व पुरानी गुजराती अपभ्रंश राजस्थानी डिंगल हिन्दी

इब और उर्दू का ज्ञान था। इटली के फ्लोरेन्स विश्वविद्यालय से आपने 'रामचरितमानस' शोध निबन्ध पर पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की। आप सन् १९१४ में रायल एशियाटिक सोसाइटी के लिए (Bardic and historical survey of Rajputana) के कार्य के सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर भारत आये। ३१ वर्ष की अवस्था में २२ नवम्बर सन् १९१९ को बीकानेर में ही आपकी मृत्यु हुई।

डा० टेसीटोरी ने राजपूताना में जो महत्त्वपूर्ण शोध कार्य किया उसकी रिपोर्ट रायल एशियाटिक सोसाइटी की सन् १९१४ १९१५, १९१६ और १९१७ की चार जिल्दों में प्रकाशित हुई है। कार्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यता थी—

Not a pleasure trip it is battle that grends

आपने निम्न तीन डिंगल ग्रन्थों का सम्पादन किया—

१ वेली कृसन रुकमणी री
२ वचनिका राठौड़ रतनसिहजी री
३ छन्द राउ जइतसी रो।

पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के द्वारा डा० टेसीटोरी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की उस खोई हुई कड़ी के पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया है जिसके बिना किसी भी आधुनिक भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण लिखा ही नहीं जा सकता।

बिड़ला मादर्स कालेज पिलानी के उपाचार्य डा० कन्हैयालाल सहल हिन्दी और राजस्थानी के सम्मान्य शोध विद्वान आलोचक और विचारक हैं। हिन्दी के आलोचना क्षेत्र में भी आपकी निम्न पुस्तकों ने मान्यता प्राप्त की है—

१ समीक्षायण २ आलोचना के पथ पर ३ समीक्षांजलि ४ चार समीक्षा ५ विवेचन ६ कामायनी का अध्ययन।

डा० सहल ने मनोविज्ञान सैद्धान्तिक समीक्षा व्यावहारिक समीक्षा तथा दर्शन और संस्कृति सम्बन्धि अनेक लेख लिखे हैं।

राजस्थानी साहित्य की शोध एवं समीक्षा के क्षेत्र में भी डा० सहल ने महत्वपूर्ण सेवाएँ की है। 'चौबोली 'हरजसबावनी 'राजस्थानी कहावतें 'राजस्थान में ऐतिहासिक प्रवाद' 'वीरसतसई 'मटो ना कहो मत', आदि उनकी सम्पादित और रचित पुस्तकों ने राजस्थानी साहित्य की प्रतिष्ठा को बल पहुँचाया है।

'राजस्थानी लोक कथाओं के मूल अभिप्राय' नाम से डा० सहल की निबन्ध माला इन दिनों एक साथ कई पत्रों में प्रकाशित हो रही है।

लोक कहावतें सांस्कृतिक उपाख्यान और ऐतिहासिक प्रवाद जैसे विषयों में विशेष रुचि और गहन अध्ययन का परिचय देकर डा सहल ने कई महत्वपूर्ण किन्तु साहित्य-क्षेत्र से उपेक्षित विधाओं को पुन प्रतिष्ठापित किया है। 'राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन' पर डा० सहल को 'डाक्टरेट' मिली है। वे 'शोध पत्रिका' और 'मरुभारती' पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डल में भी हैं।

डा मोतीलाल मेनारिया पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने राजस्थानी भाषा और साहित्य से सम्बन्धित शोध पर पी-एच डी० प्राप्त की है। डा मेनारिया की शोध प्रवृत्तियों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने डिंगल के साथ साथ राजस्थान की पिंगल धारा के भी कई अज्ञात कवियों का परिचय दिया है। उनकी राजस्थानी भाषा और साहित्य' 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' तथा 'डिंगल में वीर रस' जैसी पुस्तकों के प्रकाशन से राजस्थानी के शोध कर्ताओं का मार्ग प्रशस्त हुआ है। प्राचीन साहित्य की ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में भी डा मेनारिया ने कई मान्यताएँ स्थापित की हैं। राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति के पुनरुत्थान की दिशा में जब-जब जो भी कार्य हुए हैं उनमें डा मेनारिया का योगदान रहता आया है।

ठा० रामसिंह तँवर एम ए० संस्कृत हिन्दी और राजस्थानी के विद्वान हैं। इनके रचित और सम्पादित ग्रन्थों का ब्यौरा इस प्रकार है—

१ कानन कुसुमांजलि २ मेघमाला ३ ज्योत्स्ना ४ वेलिक्रिसन रुकमणी री ५ ढोलामारू रा दूहा ६ जटमल ग्रन्थावली ७ राव रा बैंतसी रो ८ राजस्थान के लोकगीत ९. नव गीतिका १० सौरभ ११ किरणका १२ चन्द्रसखी के भजन।

स्व रामकर्ण आसोपा नरोत्तम स्वामी और ठा रामसिंह योग विद्वानों और साहित्यकारों की इस त्रयी ने स्वतन्त्र रूप से भी और पारस्परिक सहयोग से कई ग्रन्थों का निर्माण किया है। ठा रामसिंह की भाषा सरस विचार व्यंजना कवित्वपूर्ण और वर्णन शैली स्वाभाविक है

राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर के प्रधान निर्देशक मुनि जिनविजयजी भारतीय पुरातत्व और जैन साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित हैं। मुनिजी अपने विषयों के सम्बन्ध में भारतीय ख्याति के गिने चुने विद्वानों में से हैं। इतिहास पुरातत्व साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में आपकी देन बहुमूल्य है। मुनि जी के

मार्गदर्शन और सम्पादन में पुरातत्व मन्दिर ने प्राचीन साहित्य के कई मूल्यवान ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। अन्य धर्म गुरुओं की तुलना में जैन मुनियों को यह विशेष प्रतिष्ठा देनी होगी कि वे साहित्य सृजन और क्षेत्रीय भाषाओं के विकास को अपना दायित्व मानकर चले हैं। इस दृष्टि से राजस्थानी के क्षेत्र में मुनि जिनविजयजी और मुनि कान्तिसागरजी की सेवाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

डा० दशरथ शर्मा इतिहास और संस्कृत के विद्वान तथा राजस्थानी के प्रमुख हिमायतियों में से हैं। भारतीय इतिहास साहित्य और संस्कृति प्राचीन हिन्दी और राजस्थानी प्राचीन भारतीय धर्म और सम्प्रदाय आपके शोध कार्य के प्रिय विषय रहे हैं। पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता के विवाद में डा० दशरथ शर्मा ने अपनी नयी मान्यताएँ स्थापित की हैं।

श्री जगदीशसिंह गहलोत ने 'राजस्थानी बातासार' और 'राजस्थानी कृषि कहावतों' के संकलन और प्रकाशन द्वारा प्रान्त के मौखिक साहित्य की सुरक्षा की है।

सर्वश्री मनोहर शर्मा सुमाराम जोशी विद्याधर शास्त्री पुरुषोत्तम मेनारिया श्रीलाल मिश्र बद्रीप्रसाद साकरिया रावत सारस्वत परशुराम गौड़ रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत मोहनसिंह राव सौभाग्यसिंह शेखावत नारायणसिंह भाटी कोमल कोठारी सीताराम लालस गौरीशंकर शर्मा नाथूराम संस्कर्ता, उदयवीर शर्मा लक्ष्मीलाल जोशी मोहनलाल पुरोहित दीनदयाल ओझा भगवानदत्त गोस्वामी प्रभृत कई साहित्य-संस्कृति प्रेमी लेखक राजस्थानी के प्राचीन-साहित्य और लोक-साहित्य को नवीन सज्जा में सँवारकर प्रस्तुत कर रहे हैं, साथ ही राजस्थानी की नयी सृजन धाराओं पर भी उनकी कलम चलती रहती है।

श्री मनोहर शर्मा ने लोक संस्कृति और लोक-कथाओं के आधार पर ही कई सुन्दर काव्यों की रचना की है। लोक-कथाओं के मूल अभिप्रायों पर भी आपने गवेषणा की है। 'वरदा' के सम्पादक श्री मनोहर शर्मा जितनी गति से, जितने परिमाण में और जितने श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर रहे हैं वैसी सामर्थ्य विरलों में ही होती है।

रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने भी लोक-कथाओं के आधार पर कई वार्ताएँ सजोई हैं और कहानियाँ लिखी हैं।

स्वामी नरोत्तमदास अगरचन्द नाहटा रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया लक्ष्मण आर्य डा० कन्हैयालाल सहल लक्ष्मीलाल जोशी रतनलाल मेहता जगदीशसिंह

गहलोत, भँवरलाल नाहटा, सीताराम लालस आदि ने असंख्य लोक-कहावतों का संग्रह किया है।

लोक-साहित्य विषयक गवेषणापूर्ण और मौलिक लेख लिखने वालों में सर्वश्री रावत सारस्वत, कन्हैयालाल चारण, मनोहर शर्मा, सीताराम लालस, डा० स्वर्णलता अग्रवाल, अमोलक चन्द जांगिड़, तुलाराम जोशी, नाथूराम खड़गावत, उदयवीर शर्मा, गोपीवल्लभ गोस्वामी, श्रीलाल मिश्र, बद्रीप्रसाद साकरिया, गणपति स्वामी, स्व० हरनारायण पुरोहित, मेहताबचन्द खारैड़, शिवसिंह चोयल, अगरचन्द नाहटा, नरोत्तमदास स्वामी, ठाकुर रामसिंह और दीनदयाल ओझा तथा इन जैसे कई अन्य लोगों की सेवाएँ भुलाई नहीं जा सकती।

स्व० हरनारायण पुरोहित ने 'बाँकीदास ग्रन्थावली' और बजनिधि ग्रन्था-वली का सम्पादन किया है। मेहताबचन्द खारैड़ ने 'रघुनाथ रूपक' की टीका और 'कूर्मवंश यश प्रकाश' का सम्पादन किया है।

डा० शिवस्वरूप शर्मा 'अचल' ने राजस्थानी गद्य साहित्य का इतिहास और विकास' शोध-निबन्ध पर पी-एच० डी० प्राप्त की है। प्रेमदेव भूषण ने चार भागों में लोक-गीतों के संकलन प्रकाशित किये हैं।

जैसलमेर क्षेत्र के अज्ञात कवियों और सन्तों को परिचय में लाने का दायित्व श्री दीनदयाल ओझा ने निभाया है।

श्री कोमल कोठारी नयी पीढ़ी के कुशल समीक्षक हैं।

'मरुवाणी' (राजस्थानी मासिक) के सम्पादक श्री रावत-सारस्वत को राजस्थानी के अधिकांश नवोदित लेखकों को प्रकाश में लाने और उन्हें यथोचित मान्यता दिलाने का श्रेय प्राप्त है। रावतजी राजस्थानी के श्रेष्ठ कवि और समर्थ लेखक के साथ-साथ अनुसंधानकर्ता और समीक्षक भी हैं। 'मरुवाणी' के माध्यम से वे प्रांत की भाषा और साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रहे हैं।

श्रीलाल मिश्र राजस्थानी के आधुनिक समीक्षकों में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाये जा रहे हैं। 'आधुनिक राजस्थानी गद्य' और 'आधुनिक राजस्थानी काव्य' जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत श्री मिश्र ने नये और अच्छे रचनाकारों की रचनाओं पर समीक्षा प्रस्तुत की है।

श्री पुरुषोत्तम मेनारिया द्वारा लिखित और सम्पादित निम्न पुस्तकें प्रकाश में आई हैं—१ राजस्थानी की रस-धारा (निबन्ध संग्रह) २ राजस्थानी भाषा की रूपरेखा और मान्यता का प्रश्न ३ राजस्थानी लोकगीत। प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री मेनारिया राजस्थानी का इतिहास लिख रहे हैं।

डा० हरिशंकर शर्मा 'हरीश' ने प्राचीन साहित्य विशेषतः जैन साहित्य पर शोध कार्य किया है। नाट्याचार्य प० प्रभुनारायण शर्मा राजस्थानी ख्यात साहित्य' पर शोध कार्य कर रहे हैं। श्री भगवानदत्त गोस्वामी ने करीब एक सौ बालोपयोगी कथाओं का संग्रह किया। श्री चन्द्रदान चारण ने 'गोगा-चौहान' लोक-काव्य का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

पतराम गौड़ ने डा० ईश्वरदान आशिया और डा० कन्हैयालाल सहल के साथ मिलकर महाकवि सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई' का सम्पादन किया है। 'ऐतिहासिक' 'मानव और प्रकृति', 'समर्थ गुरु रामदास' और 'राजस्थानी मुहावरे' आपकी अन्य पुस्तकें हैं। 'चौबोली' और 'हरदास बावनी' के सम्पादन में भी आपने डा० सहल का सहयोग किया है।

प्रो० नरेन्द्रकुमार भाणावत 'वेलि साहित्य' पर शोध कर रहे हैं। डा० स्वर्णलता अग्रवाल ने लोक-साहित्य पर पी-एच० डी० प्राप्त की है।

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत को राजस्थानी के कई अज्ञात कवियों और लेखकों की विपुल जानकारी है जिन्हें वे प्रकाश में लाते जा रहे हैं। आपने साहित्य संस्थान उदयपुर द्वारा प्रकाशित कई पुस्तकों का सम्पादन किया है।

डिंगल और पिंगल के मान्य विद्वान श्री मोहनसिंह कविराज ने 'पृथ्वीराज रासो' (चार भागों में) तथा कई डिंगल गीतों का सम्पादन किया है। राजस्थानी के शोध स्नातकों को राव साहब से बड़ी मदद मिलती है।

राजस्थानी शोधकार्य का विकास तीव्रगति से हो रहा है।

उत्थान के प्रयत्न

वाल्मीकि-कालिदास और भवभूति होमर, गेटे और शेक्सपियर, चन्दबरदाई, पृथ्वीराज, सूर और तुलसी मीरमाण-ईसरदास और सूर्यमल्ल जैसी विभूतियाँ भाषा और साहित्य की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ हैं। ऐसी युगान्तरकारी प्रतिमाएँ सम्बन्धित भाषाओं के गौरव को बढ़ाती हैं। तुलसी के रामचरित मानस में अवधी की साधना फलीभूत हो गई। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और शरद चटोपाध्याय की रचनाओं का पूरा आनन्द लेने के लिए लोग बंगला भाषा का अध्ययन करते देखे गये हैं।

साहित्यकार वाणी का उपासक होता है। समाज की अभिव्यक्ति के माध्यम से ही वह नया स्वर और सौन्दर्य भरता है जिसे पाकर वाणी धन्य हो उठती है।

भाषा और साहित्य के उत्थान में दो प्रकार के योगदान होते हैं। एक तो समर्थ स्रष्टाओं का योगदान जिनका सृजन भाषा को प्रतिष्ठा दिलाता है। दूसरा साहित्य सेवियों का योगदान जो नये सृजन और नयी प्रतिभाओं को बढ़ावा देकर अपनी संस्कृति और भाषा की ओर उनकी रुचि आकर्षित करता है। जो भाषा को शास्त्रीय परिधान में सँवारता है और निष्पक्ष तथा संतुलित मूल्यांकन का दायित्व निभाकर सरस्वती सेवकों को उनकी सामर्थ्य के अनुरूप प्रतिष्ठा देता है।

समर्थ स्रष्टाओं के योगदान का यह प्रसंग नहीं है और प्रस्तुत निबन्ध के सन्तुलन की सीमा में उसका समाहार भी असम्भव है।

राजस्थानी भाषा और साहित्य के पुनरुद्धार, प्रचार एवं प्रसार की दिशा में तथा उसे पुनः एक साहित्यिक भाषा की प्रतिष्ठा दिलाने में जिन व्यक्तियों संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं का अब तक जो योगदान रहा है उसकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जा रही है।

अन्यत्र इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ-साथ खड़ी बोली को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने की लालसा बलवती हो उठी और राजस्थान के साहित्यकार भी हिन्दी की ओर अधिक झुके।

राजस्थानी भाषा के समर्थकों पर कभी-कभी यह आरोप लगाया जाता है कि वे राजस्थानी की ओर उन्मुख होकर राष्ट्र भाषा हिन्दी की मान्यता को धक्का पहुँचा रहे हैं। इस प्रकार का वक्तव्य किसी सन्तुलित मस्तिष्क की उपज नहीं हो सकती। राजस्थानी की पूर्व परम्परा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी को मात्र राजस्थानी से ही नहीं भारत की हर लोक भाषा से बल मिलता रहा है। अवधी ब्रज और राजस्थानी के क्षेत्रों में क्रमशः तुलसी सूर और चन्दबरदाई की सेवाओं को नहीं भुलाया जा सकता। राष्ट्रीय भावना के प्रसार काल में जिन सरस्वती उपासकों ने हिन्दी सेवा के नाम पर अपने संस्कारों की भाषा का भी मोह त्याग दिया हिन्दी के विकास में उनके इस योगदान को किसी भी स्थिति में नहीं भुलाया जा सकता।

वर्तमान स्थिति में भी राजस्थान-अन्य राज्यों के भाषाई आन्दोलनों से बिलकुल विपरीत स्थिति में है। यहाँ राजस्थानी और हिन्दी दोनों भाषाओं का विकास समानान्तर गति से हो रहा है। माध्यम की उपर्युक्त दोनों भाषायें समानान्तर गति से अपना विकास कर रही हैं और दोनों धाराओं को एक दूसरे से पर्याप्त बल और प्रोत्साहन मिला है। साथ ही इतना भी स्पष्ट

है कि राजस्थान में हिन्दी और राजस्थानी दोनों भाषाओं के उपासकों का पंथ भी एक ही है, इसलिए राजस्थानी के उपासकों पर उपयुक्त आरोप कि वे हिन्दी के विरोधी हैं, उनकी सेवाओं के प्रति अन्याय है।

व्यक्तियों का योगदान

राजस्थानी के पुनर्प्रतिष्ठापक स्व० रामकर्ण आसोपा ने हिन्दी और राजस्थानी दोनों की अविस्मरणीय सेवा की है। श्री आसोपा नये युग के सबसे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने राजस्थानी प्रचार प्रसार का बीड़ा उठाया। राजस्थानी को एक साहित्यिक भाषा की प्रतिष्ठा दिलाने के लिए आपने बहु प्रयत्न किये यथा १ अनुपलब्ध और विलुप्त साहित्य की खोज एवं संग्रह २ लोक साहित्य का संकलन ३ प्राचीन साहित्य और लोक साहित्य का मूल्यांकन एवं सम्पादन ४ राजस्थान के लेखकों में राजस्थानी की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति का जगाना ५ बोलचाल और व्यवहार में राजस्थानी का उपयोग ६ डिंगल कोष और राजस्थानी व्याकरण का निर्माण ७ श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद ८ भारतीय और विदेशी अनुसंधान कर्त्ताओं एवं छात्रों को राजस्थानी का शिक्षण आदि आदि।

स्व० रामकर्ण आसोपा के समय में ही सौभाग्य से डा० टेसीटोरी जैसे विद्वानों की भारत यात्रा हुई और उन्होंने राजस्थानी भाषा और साहित्य की समृद्धि को प्रतिष्ठा दी फलतः अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के विद्वान भी राजस्थानी की ओर आकर्षित हुए।

डा० ग्रियर्सन डा० टेसीटोरी एलेन आदि पाश्चात्य विद्वानों का योगदान स्तुत्य है।

श्री शिवचन्द्र भरतिया को राजस्थानी का भारतेन्दु कहा जाता है। भरतियाजी ने लोकोपयोगी ग्रन्थों को सरल भाषा में लिखकर राजस्थानी को लोकप्रिय बनाया। एक सफल नाटककार के रूप में भी आपने राजस्थानी के विकास में योग दिया। उनके लिखे 'केसर विलास' 'फाटका जंजाल' और 'बुढ़ापा की सगाई' नाटक काफी लोकप्रिय हुए और लोगों ने यह स्वीकार किया कि राजस्थानी में भी श्रेष्ठ साहित्य की रचना सम्भव है। श्री भरतियाजी का जन्म सं० १९१० में डीडवाणा में हुआ लेकिन बाद में आप हैदराबाद के कन्नड़ गाँव में जा बसे। संस्कृत हिन्दी मराठी और राजस्थानी भाषाओं के ज्ञाता तथा दर्शन के विद्वान श्री भरतियाजी सं० १९७५ में परलोकवासी हुए।

आपने राजस्थानी में ६, संस्कृत में ३ मराठी में ११ और हिन्दी में १७ ग्रन्थों की रचना की। उल्लिखित नाटकों के अतिरिक्त उनकी कुछ रचनाएँ ये हैं—

१ कनक सुन्दर (राजस्थानी का प्रथम उपन्यास) २ मोतियाँ की कंठी ३ वैश्य प्रवास ४ विभ्रान्त प्रवासी ५ संगीत मानकुँवर नाटक ६ बोध दर्पण।

आपकी भाषा में सफाई और सादगी तथा विचारों में स्पष्टता मिलती है।

राजस्थानी के उत्साही लेखक श्री गुलाबचन्द नागौरी और श्री शोभाचन्द्र जम्मड़ राजस्थानी के विकास में निरन्तर योग देते रहे। श्री जम्मड़ के सम्बन्ध में उनका निम्न वक्तव्य दृष्टव्य है—

'यदि हम आज से यह प्रतिज्ञा कर लें कि जैसे भी होगा अपनी मातृभाषा को उन्नत बनाकर छोड़ेंगे तो कोई भी विघ्न हमारे काम में बाधा नहीं डाल सकता। स्मरण रहे-जब तक हम अपनी मातृभाषा को उन्नत नहीं बनाएँगे तब तक हमारी उन्नति की गति मन्थरगती रहेगी।

इसी भावना से प्रेरित होकर श्री जम्मड़ ने राजस्थानी में कई नाटक लिखे जिन्हें अनेक स्थानों पर सफलता पूर्वक खेला गया।

श्री रामदेव चौखाणी जिनका स्वर्गवास २० जून सन् ५८ को ८० वर्ष की आयु में हुआ आजीवन राजस्थानी भाषा की सेवा करते रहे। वे राजस्थानी को प्रान्त भाषा का स्थान दिलवाने के प्रबल हिमायती रहे। बीकानेर के सादूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट व राजस्थानी की कई अन्य प्रवृत्तियों से उनका सीधा सम्पर्क रहा। कलकत्ते का मारवाड़ी समाज उन्हें इन सेवाओं [illegible] लिए अभिनन्दन पत्र भेंट करने वाला था लेकिन उससे पूर्व ही वे स्वर्गवासी हो गये।

कुचोंरिया ग्राम के श्री बालाबक्स चारण (सं १९१९-१९८८) ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सात हजार रुपये का दान देकर 'बालाबक्स राजपूत चारण पुस्तक माला फण्ड' स्थापित किया जिससे राजपूत चारणों द्वारा लिखित कई ग्रन्थ प्रकाश में आये।

श्री उदयराज उज्ज्वल, ठाकुर रामसिंह नरोत्तमदास स्वामी और अगरचन्द नाहटा गत कई वर्षों से राजस्थानी के विकास में भरपूर योग दे रहे हैं जिनकी सेवाओं की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। श्री रावत सारस्वत रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत डा कन्हैयालाल सहल मनोहर शर्मा, बद्रीप्रसाद

पंचोरिया चन्द्रसिंह मुरलीधर व्यास सीताराम आदि राजस्थानी के कई विद्वानों ने अपने कई-कई लेखों में राजस्थानी भाषा और साहित्य की उत्कृष्ट उपलब्धियों का परिचय दिया है।

श्री दीनदयाल ओझा गोविंदराम शर्मा तुलाराम जोशी प्रकाशचन्द्र शर्मा आदि ने राजस्थानी-लोक-साहित्य पर लेख लिखे जिससे साहित्य की परम्परा को तो बल मिला ही साथ ही नये सृजन को भी प्रेरणा प्राप्त हुई।

सर्व श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या अगरचन्द नाहटा रामदेव चौखाणी नरोत्तमदास स्वामी ठा० रामसिंह हरिवल्लभ और भगवतसिंह शेखावत ने साहित्यिक और सार्वजनिक मंचों पर राजस्थानी अभिव्यक्ति में ही कई वक्तव्य दिये।

इतिहासज्ञ श्री झाबरमल शर्मा महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह और डा० दशरथ शर्मा ने राजस्थानी संस्कृति और साहित्य के गौरवपूर्ण अतीत का उद्घाटन किया है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य रचना के क्षेत्र में जितने भी लेखकों की चर्चा की गई है लगभग वे सभी राजस्थानी के प्रचार प्रसार के प्रति अपना दायित्व निभा रहे हैं। कुछ अपनी रचनाओं से कुछ साहित्यिक संस्थाओं के माध्यम से और कुछ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सेवा कर रहे है।

पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

राजस्थान में तथा प्रवासी राजस्थानियों के सहयोग से तथा राजस्थान के बाहर भी समय समय पर प्रकाशित कई पत्र-पत्रिकाओं ने राजस्थानी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है।

चामण गाँव की संस्था ने मारवाड़ी हितकारक' पत्र निकाला। लगभग उन्हीं दिनों बम्बई से 'मारवाड़ी मित्र' निकला लेकिन अनेक समस्याओं से जूझ कर वे पत्र अधिक समय तक नहीं टिक सके। नियमित और लम्बे प्रकाशन की दृष्टि से 'चारण' का योगदान उल्लेखनीय है। इस पत्र ने चारण जाति के कई श्रेष्ठ कवियों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। ठाकुर ईश्वरदान आशिया भँवर शुभकर्ण कविया तथा किशोरसिंह सौदा ने सम्पादकों के रूप में चारण को अपनी सेवाएँ दीं। इसी सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध चारण पत्रकार समर्थदान की सेवाएँ भी उल्लेखनीय है। 'चारण' अखिल भारतीय चारण सम्मेलन का प्रकाशन है।

दक्षिण भारत (पूना) से प्रकाशित 'राजस्थानी वीर' का प्रकाशन भी

यह प्रमाणित करता है कि भारत के सभी क्षेत्रों में यथा साध्य राजस्थानी के प्रचार में योग दिया है ।

श्री कचरदास कर्णानी ने 'पचराग' नाम से राजस्थानी का हास्यरस प्रधान पत्र निकाला लेकिन वह भी अधिक समय तक नहीं चल सका ।

राजस्थानी के उपासक श्री जयनारायण व्यास ने 'आगीवाण' पत्र का प्रकाशन किया था जिसमें जब तक भी वह प्रकाशित हुआ प्रतिनिधि राजस्थानी लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की और राजस्थानी के आन्दोलन में योग दिया ।

राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता ने 'राजस्थान' निकाला । स्व० सूर्यकरण पारीक ने भी 'राजस्थानी' नाम से पत्र निकाला और उसके माध्यम से राजस्थानी के पाठकों तक अपने विचारों को पहुँचाया ।

राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'राजस्थान साहित्य' निकाला लेकिन वह भी असमय में ही ठप्प हो गया ।

आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व जयपुर से एक राजस्थानी दैनिक का प्रकाशन भी होने लगा था जिसका नाम 'जागती जोत' था । यह 'जोत' पूरी तरह जाग भी नहीं पाई कि बुझ गई ।

साहित्य संस्थान के शोध विभाग का प्रकाशन 'शोध-पत्रिका' (त्रैमासिक) गत ११ वर्षों से प्रकाशित हो रही है । यह पत्रिका राजस्थान के इतिहास पुरातत्व साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण गवेषणात्मक सामग्री प्रस्तुत करती है । महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह, अगरचन्द नाहटा नरोत्तमदास स्वामी और डा० मोतीलाल मेनारिया जैसे विद्वानों का सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त है ।

सादूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित 'राजस्थान भारती' और बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'मरु भारती'—दोनों त्रैमासिक पत्रिकाएँ हैं । प्राचीन-साहित्य लोक-साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र की महत्वपूर्ण जानकारी इन पत्रिकाओं से प्राप्त होती है । 'राजस्थान भारती' अपेक्षाकृत अधिक नियमित है और उसने राजस्थानी के समर्थ एवं नये लेखकों की रचनाओं को प्रकाशित करके आधुनिक साहित्य के लिए भी बहुत कुछ किया है । सर्वश्री बद्रीप्रसाद साकरिया विद्याधर शास्त्री अगरचन्द नाहटा नरोत्तमदास स्वामी और डा० कन्हैयालाल सहल ने इन पत्रिकाओं को अपनी सेवाएँ प्रदान की है ।

शोध-संस्थान, चौपासनी द्वारा प्रकाशित 'परम्परा' विशेष उल्लेखनीय है। इसके कुछ विशेषांकों (गोरा हटजा डिंगल कोष-बात साहित्य आदि) ने भी भारी ख्याति अर्जित की है। आधुनिकतम शैली छपाई और गेटअप बहुमूल्य सामग्री—सभी दृष्टियों से 'परम्परा' अपने ढंग की निराली ही शोध-पत्रिका है। सर्वश्री नारायणसिंह भाटी सीताराम लालस कोमल कोठारी और विजयदान देथा की सेवाएँ 'परम्परा' को प्राप्त हैं।

बिसाऊ से प्रकाशित और श्री मनोहर शर्मा द्वारा सम्पादित 'वरदा' (त्रैमासिक) प्राचीन और आधुनिक साहित्य तथा लोक-साहित्य सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री प्रकाशित करती है साथ ही राजस्थानी के लेखकों की प्रतिनिधि रचनाओं का भी प्रकाशन करती है। श्री मनोहर शर्मा के अधिकांश लेख और काव्य 'वरदा' में ही प्रकाशित हुए हैं।

इसमोर हाई स्कूल की पत्रिका 'साधना' के स्पष्टतः दो भाग हैं। एक भाग में राजस्थानी के प्रतिनिधि लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। दूसरे भाग में छात्रों की स्वरचित रचनाएँ होती हैं। पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्रीलाल मिश्र हैं। नये लेखकों को राजस्थानी-साहित्य की ओर उन्मुख करने का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

उपर्युक्त सभी पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित होती हैं लेकिन उनका सम्बन्ध राजस्थानी-साहित्य से ही है। प्रसंगों के अनुसार उनमें राजस्थानी का कलेवर भी पर्याप्त मात्रा में होता है।

'मरुवाणी' मासिक राजस्थान भाषा प्रचार सभा का मासिक प्रकाशन है जिसकी भाषा राजस्थानी है और सम्पादक राजस्थानी के परम उपासक श्री रावत सारस्वत हैं। राजस्थानी अभिव्यक्ति में प्रकाशित होनेवाली यह एक मात्र मासिक पत्रिका है जो गत कई वर्षों से आधुनिक राजस्थानी-साहित्य के प्रकाशन में अपनी अन्यतम सेवाएँ प्रदान कर रही है। उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत निबन्ध के लेखक को अपने उपयोग की अधिकांश सामग्री इसी पत्रिका से प्राप्त हुई है।

क्षेत्रीय संकीर्णताओं से पृथक रहकर और भाषागत मान्यताओं में अत्यधिक उदार बनी रहकर 'मरुवाणी' ने सम्पूर्ण प्रांत के राजस्थानी लेखकों की रचनाओं को सम्मान दिया है और उन्हें यथोचित मान्यता प्रदान की है।

रतनगढ़ से प्रकाशित दो पत्र 'ओळमो' और 'कुरजां' राजस्थानी भाषा में ही प्रकाशित होते हैं और राजस्थान के नये सृजन का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन दोनों पत्रों का प्रकाशन नया-नया है। श्री 'कलोत्कल्पना' 'ओळमो' के और श्री अद्भुत शास्त्री 'कुरजां' के सम्पादक हैं।

'संघशक्ति' जयपुर, 'जीवनगीत' बनस्थली 'क्षात्रधर्म' अजमेर 'संघर्ष' जयपुर, 'क्षत्रिय वीर' और 'कमलेश' जोधपुर ने भी इस विकास में योगदान किया है।

देश भर की कई अन्य पत्र-पत्रिकाएँ भी राजस्थानी साहित्य विषयक लेख प्रकाशित करती हैं यथा १ नागरी प्रचारिणी पत्रिका २ कल्पना ३ ममता ४ सरस्वती ५ लहर आदि। राजस्थान की कई अन्य पत्रिकाएँ भी इस क्षेत्र में अपना योगदान करती हैं, जैसे 'अमर ज्योति' साप्ताहिक और 'प्रेरणा' मासिक। 'अमरज्योति' के सम्पादक श्री नारायण चतुर्वेदी और 'प्रेरणा' के सम्पादक श्री वैजनारायण व्यास हैं।

राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा हाल ही में 'मधुमती' त्रैमासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया है जिसके सम्पादक राजस्थानी भाषा और साहित्य के विद्वान डा० मोतीलाल मेनारिया हैं। 'मधुमती' में हिन्दी के साथ-साथ राजस्थानी की रचनाओं को भी प्रकाशित किया जाता है।

पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राजस्थानी-साहित्य का व्यापक प्रचार हुआ है उसके लेखकों की संख्या बढ़ी है और उसका शास्त्रीय एवं समीक्षात्मक पक्ष भी सुदृढ़ हुआ है।

संस्थाओं का योगदान

१ मारवाड़ी भाषा प्रचारक—राजस्थानी भाषा के प्रचार प्रसार में किये गये प्रारम्भिक प्रयत्नों में खामगांव (बरार) की संस्था 'मारवाड़ी भाषा प्रचारक मण्डल' ने भी अपना भारी योग दिया है। उक्त संस्था ने राजस्थानी में लिखे कई नाटक अभिनीत किये राजस्थानी से सम्बन्धित कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

२. राजस्थानी साहित्य परिषद्—राजस्थान साहित्य परिषद् बीकानेर ने भी राजस्थानी के प्रचार का बीड़ा उठाया। पिलानी से भी 'राजस्थानी ग्रन्थ माला' के अन्तर्गत दो पुस्तकें प्रकाशित हुई।

३ साहित्य संस्थान—साहित्य संस्थान' उदयपुर अगस्त १९५७ में स्थापित हुई संस्था है, जो राजस्थान में यत्र-तत्र बिखरे साहित्य की शोध खोज संग्रह, संपादन सम्पादन एवं प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। राजस्थानी साहित्य संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में साहित्य संस्थान का भारी योगदान रहा है। राजस्थानी साहित्य को व उससे सम्बन्धित छोटी-बड़ी लगभग ११ पुस्तकें संस्थान ने अब तक प्रकाशित की हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं —

१ पृथ्वीराज रासो (सम्पादित)—चार भाग
२ पृथ्वीराज रासो की विवेचना
३ राजस्थानी वार्ता—७ भाग
४ प्राचीन राजस्थानी गीत—१२ भाग
५ राजस्थानी गीत-साहित्य—१ भाग
६ राजस्थानी लोक-गीत—६ भाग
७ राजस्थानी भाषा—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
८ लोक-साहित्य एवं प्राचीन साहित्य की विवेचना की दो पुस्तकें (मुद्रणाधीन)
९ अन्य कई।

साहित्य संस्थान के अन्तर्गत महाकवि सूर्यमल्ल आसन की स्थापना की गई है, जिसके अन्तर्गत राजस्थानी-साहित्य पर भाषण-मालाओं का आयोजन किया जाता है। सर्वश्री जनार्दनराय नागर, नरोत्तमदास स्वामी, डा० मोती लाल मेनारिया, अगरचन्द नाहटा, सौभाग्यसिंह शेखावत, कविराज मोहनसिंह, सबलदान आशिया, इतिहासज्ञ नाथूलाल व्यास तथा कृष्णचन्द शास्त्री की सेवाएँ इस संस्था को प्राप्त हैं।

संस्थान प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों, पट्टों-परवानों की खोज के लिये प्रयत्न शील है और 'राजस्थान में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' नाम से चार पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है। इनसे राजस्थानी के शोध-कर्ताओं को बड़ी सहायता मिली है।

४ हिन्दी विश्व भारती—बीकानेर की संस्था 'हिन्दी विश्व भारती' साहित्य-सेवा के क्षेत्र में अल्पायु में ही काफी प्रतिष्ठा अर्जित कर चुकी है। यह संस्था हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानी—तीनों भाषाओं के साहित्यकारों को संगठित करने तथा उनकी रचनाओं के प्रकाशन की दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील है। बीकानेर की साहित्यिक और सांस्कृतिक हलचलों में इसका प्रमुख योगदान है। संस्था का अनुसंधान विभाग इन दिनों राजस्थानी सन्त-साहित्य, राजस्थानी कवियित्रियों एवं राजस्थानी लोकोक्तियों पर विशेष कार्य कर रहा है। सर्वश्री विद्याधर शास्त्री, पुष्करदत्त शर्मा, गौरीशंकर शास्त्री, भगवानदत्त गोस्वामी और दीनदयाल ओझा की सेवाएँ संस्था को प्राप्त हैं।

बीकानेर की दो और संस्थाएँ १ भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान और २ शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट—राजस्थानी-साहित्य के विकास में निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

५. भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान—भारतीय विद्या मंदिर शोध

प्रतिष्ठान' प्राचीन ग्रन्थों की खोज लोक-साहित्य का संग्रह राजस्थान की लोक
कला एवं लोक-सङ्गीत समाज एवं संस्कृति लोक-परम्पराओं पुरातत्व ए
इतिहास आदि के विविध क्षेत्रों में शोध-कार्य कर रहा है सन् १९५७
स्थापित इस संस्था के पास ८ महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशनार्थ तैयार है। गत ३ व
से संस्था ने लगभग ३५० हस्तलिखित ग्रन्थों एक हजार से अधिक लोक-गीतों
सैकड़ो लोक-वार्ताओं आदि का संग्रह किया है। प्राप्त जानकारी के अनुसा
संस्था इस समय बिश्नोई सम्प्रदाय जसनाथी सम्प्रदाय राजस्थानी महाभारत
एक लोक-काव्य भारतीय वाङ्मय को बीकानेर की देन राजस्थानी लोकगी
एवं लोक-वार्ताओं पर काम कर रही है।

सर्वश्री नरोत्तमदास स्वामी फागुन गोस्वामी शम्भूदयाल सक्सेना
दान चारण नाथूराम खड़गावत अगरचन्द शर्मा मूलचन्द पारीक आ
व्यक्तियों की सेवाएं इस संस्था को प्राप्त है।

६ सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट—यह संस्था सन् १९४४ ई
स्थापित हुई। इसके तत्वावधान में हिन्दी के विशाल शब्दकोष तथा 'राजस्थान
मुहावरा कोष' का सम्पादन हो रहा है। लगभग १ लाख राजस्थानी शब्दों क
आधुनिक ढंग पर सम्पादन किया जा रहा है।

इन्स्टीट्यूट के अन्तर्गत निम्न ५ विभाग गतिशील हैं —

१ संस्कृत और भारतीय संस्कृति विभाग।
२ कला और संग्रहालय विभाग।
३ शुद्ध पत्रिका विभाग।
४ राजस्थानी साहित्य विभाग।
५ लोक साहित्य व पुस्तकालय विभाग।

संस्था ने राजस्थानी की निम्न तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं —

१ ऋतायण (ऋतु काव्य) २ बरस गाठ (कहानी संग्रह) ३ आ
भटकी (उपन्यास)।

प्राप्त जानकारी के अनुसार संस्था के पास १५-२० पुस्तकें तैयार हैं औ
शीघ्र प्रकाशित हो रही है।

७ साहित्य समिति बिसाऊ—राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊ
अप्रकाशित राजस्थानी साहित्य के पुनरुद्धार एवं नये सृजन की अभिवृद्धि में योग
दे रही है। समिति ने राजस्थानी साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित निम्न
पुस्तकें प्रकाशित की है —

१ राजस्थानी गीतों में रामकथा २ राजस्थानी लोक संस्कृति की रूपरेखा ३ रससिद्ध रामनाथ कविया ४ अर्वाचीन राजस्थानी काव्य ५ रुकमणी मंगल ।

सर्वश्री प० श्रीलाल मिश्र, मनोहर शर्मा, डा० कन्हैयालाल सहल, कुमाराम जोशी, उदयवीर शर्मा, सीताराम शर्मा और मनोहर शर्मा की सेवाएं इस संस्था को प्राप्त हैं ।

८ राजस्थान भाषा प्रचार सभा — 'राजस्थान भाषा प्रचार सभा' जयपुर, का उद्देश्य राजस्थान की भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति की रक्षा एवं विस्तार है । लोक-साहित्य एवं प्राचीन साहित्य का संग्रह एवं प्रकाशन, राजस्थानी भाषा की परीक्षाओं एवं अध्ययन केन्द्र का संचालन तथा 'मरुवाणी' मासिक का प्रकाशन इसकी प्रमुख प्रवृत्तियां हैं । राजस्थानी-साहित्य के प्रचार प्रसार एवं विकास में अत्यधिक सम्मान के साथ उल्लेखनीय योगदान देने वाली यह संस्था सन १९५३ में स्थापित हुई थी ।

संस्था ने शेखावाटी क्षेत्र के १००० लोक-गीतों का संग्रह किया, कई गीतों की स्वर लिपियां तैयार करके उनके लोक-संगीत को सुरक्षित किया, २५० लोक-कथाओं का संग्रह किया, १०० से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थों का पता लगाया और अब १ ग्रन्थों का सम्पादन कार्य चल रहा है जिनमें निम्न ६ ग्रन्थ प्रकाशन के लिए तैयार हैं —

१ वनपथ विलास २ महादेव पारवती री वेलि ३ चन्द्रायन ४ डिंगल गीत ५ राजस्थानी गाथा ६ राजस्थानी कविता कौमुदी ।

इस संस्था का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य राजस्थानी की परीक्षाओं का सञ्चालन करना है । त्रिमहात राजस्थानी साहित्य की तीन परीक्षाएं प्रारम्भ की हैं, जिनमें पहले वर्ष ही सैकड़ों परीक्षार्थी बैठे हैं । संस्था प्रयत्नशील है कि राजधानी जयपुर में एक सर्वांगीण राजस्थानी अध्ययन केन्द्र चल सके ।

संस्था को सर्वश्री रावत सारस्वत, कुम्भाराम आर्य, देवीसिंह मंडावा, चन्द्रसिंह, रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत आदि का सहयोग प्राप्त है ।

९. शोध संस्थान चोपासनी — 'राजस्थानी शोध संस्थान चोपासनी' राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में शोध कार्य, संग्रहण एवं प्रकाशन के कार्य कर रही है । प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, चित्रकला, इतिहास तथा पुरातत्व सम्बन्धी विपुल सामग्री का पुनरुद्धार इस संस्था ने किया है । शोध संस्थान की नवीन प्रमुख प्रवृत्ति 'राजस्थानी रास' का सम्पादन और प्रकाशन है, जिसका प्रमुख श्रेय श्री सीताराम लालस को है ।

संघ सदस्य श्री विजयसिंहजी भैरूसिंहजी सेवड़ा, नारायणसिंह भाटी, कोमल कोठारी एवं विजयदान देथा आदि की सेवाएँ इस संस्था को प्राप्त हैं।

१० कुमार साहित्य परिषद्—जोधपुर की अन्तर्प्रान्तीय कुमार साहित्य परिषद् गोष्ठियों, विचार सभाओं, परिसंवाद, सम्मेलनों, भाषण मालाओं, सांस्कृतिक प्रदर्शनों एवं साहित्यिक मेलों आदि के विविध आयोजन करती है। आज की नई पीढ़ी को साहित्यिक-सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आधार पर जागरूक करने की दिशा में संस्था का भारी योगदान है।

सर्वश्री डा. देवराज उपाध्याय, नेमिचन्द्र जैन 'भावुक', सत्यपतिचन्द्र भण्डारी आदि की सेवाएँ इस संस्था को प्राप्त हैं।

राज्य सरकार के प्रयास

राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी और राजस्थान ललित कला अकादमी की स्थापना करके राज्य सरकार ने राजस्थान के साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में नव-चेतना की लहर फैलाई है।

राजस्थान-साहित्य-अकादमी

राजस्थान साहित्य अकादमी हिन्दी, राजस्थानी, उर्दू व संस्कृत सभी भाषाओं में रचित-साहित्य और राजस्थान के साहित्यकारों की पुस्तकों के प्रकाशन, साहित्य-पुरस्कार, साहित्यकारों को आर्थिक अनुदान, साहित्य-गोष्ठियों के आयोजन आदि कार्य करती है।

अकादमी के अंतर्गत राजस्थानी साहित्य का पृथक विभाग है, जिसके अंतर्गत कार्य प्रगति की पहली किश्त के रूप में राजस्थानी की निम्न पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं।

१ गत पचास वर्षों में रचित—'प्रतिनिधि काव्य-संग्रह'
२ गत पचास वर्षों में रचित—'प्रतिनिधि कहानी-संग्रह'
३ गत पचास वर्षों में रचित—'प्रतिनिधि निबन्ध-संग्रह'
४ गत पचास वर्षों में रचित—'प्रतिनिधि एकांकी-संग्रह'
[illegible] रवीन्द्र के कुछ प्रतिनिधि गीतों का राजस्थानी अनुवाद
६ रवीन्द्र कृत गीतांजलि का राजस्थानी अनुवाद
७ रवीन्द्र साहित्य के अन्य प्रकाशन।

राज्य सरकार का दूसरा उल्लेखनीय योगदान जोधपुर के 'प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' को ६ हजार रुपया वार्षिक अनुदान देना है, जो राजस्थानी के प्राचीन साहित्य के संग्रहण, सम्पादन तथा प्रकाशन के निमित्त है।

उपसंहार

किसी भी विषय का उपसंहार लिख देने का साहस उस स्थिति में हो सकता है, जब उस विषय को अपनी वार्ता के कलेवर में सम्पूर्णरूप से समाहित कर लिया गया हो। 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य' के प्रस्तुत विवेचन को इस दृष्टि से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। आधुनिक साहित्य की विभिन्न विधाओं और उनके विभिन्न प्रसंगों को एक सीमित कलेवर में बांध पाना सामर्थ्यवान लेखकों का ही काम है साहित्य के सामान्य से विद्यार्थी का नहीं।

इतना अवश्य है कि अपनी सामर्थ्य के अनुरूप विषय की मर्यादा को समझने और उसे लिख पाने में पूरा-पूरा ईमानदार रहने का प्रयत्न अवश्य किया गया है।

जो कुछ भी लिखा गया है वह आधुनिक राजस्थानी साहित्य का परिचय मात्र ही कहा जा सकता है और परिचय भी पूरा-पूरा लिख पाया है या नहीं इसमें संदेह करने की काफी गुंजाइश है। कम से कम इस रूप में इस प्रयास को अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिये कि साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों की यत्र-तत्र बिखरी हुई जानकारी को एक स्थान पर एकत्रित करने की चेष्टा की गई है जो राजस्थानी साहित्य के इतिहास लेखकों के लिये किसी न किसी रूप में अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सहायक पुस्तक सूची

(क) शोध एवं आलोचना

१ ढोला मारू रा दोहा	(सम्पादकीय)
२ बांकीदास ग्रंथावली	(सम्पादकीय)
३ राजस्थानी साहित्य (एक परिचय)	श्री नरोत्तम दास स्वामी
४ राजस्थानी भाषा और साहित्य	डा० मोतीलाल मेनारिया
५ राजस्थानी भाषा	डा सुनीति कुमार चाटुर्ज्या
६ राठोड़ रतनसिंहजीरी वचनिका	सम्पादक-काशीराम शर्मा डा० रघुवीरसिंह
७ राजस्थानी गद्य-साहित्य का विकास (शोध निबन्ध)	डा शिवस्वरूप शर्मा 'अचल'
८ राजस्थानी भाषा और साहित्य	श्री नरोत्तमदास स्वामी
९ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा	श्री नरोत्तमदास स्वामी
१ वेलि क्रिसन रुकमणी री	(सम्पादकीय)
११ हिन्दी साहित्य कुछ विचार	डा० प्रेमनारायण टण्डन
१२ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	डा० दशरथ ओझा
१३ हिन्दी साहित्य का आदिकाल	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१४ सन् ५७ की राज्य क्रान्ति	डा रामविलास शर्मा

(ख) सृजन

१५ अमर काव्य	अमर दास
१६ कळायण	नानूराम संस्कर्ता
१७ म्योही	नानूराम संस्कर्ता
१८ चेतावणी रा चू गट्या	बारहठ केसरीसिंह
१९ बागली बोली	गिरधारीसिंह पड़िहार
२ प्रताप प्रशस्ति	डा० रघुवीरसिंह
२१ प्रणवीर प्रताप	गिरधारीलाल शास्त्री
२२ बादळी	चन्द्रसिंह
२३ माया सतक	उदय राज उज्ज्वल
२४ बरसैंच	नानूराम संस्कर्ता
२५ सुर्पावास	नारायणसिंह भाटी
२६ बोलावण	स्व० सूर्य करण पारीक
२७ मठो तो कहो मत	डा कन्हैयालाल सहल

२८ राजस्थानी मूँछ — मनोहर शर्मा मंजुल
२९ भू — चन्द्रसिंह
३० वीर सतसई — सूर्यमल्ल
३१ वीर सतसई — नाथूदान महियारिया
३२ वीर पूजा सतसई — रावत सारस्वत / राजस नरेन्द्रसिंह
३३ वंश भास्कर — सूर्यमल्ल
३४ साफ — नारायणसिंह भाटी
३५ स्वराज बावनी — तेज कवि

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ

१ अजन्ता (मासिक)
२ अमर ज्योति (साप्ताहिक)
३ ओळमो
४ कल्पना (मासिक)
५ कुरजां
६ चारण
७ परम्परा (त्रैमासिक)
८ प्रेरणा (मासिक)
९ मरुवाणी (मासिक)
१० मधुमती (त्रैमासिक)
११ मरुभारती (त्रैमासिक)
१२ राजस्थान
१३ राजस्थान साहित्य
१४ राजस्थान भारती (त्रैमासिक)
१५ वरदा (त्रैमासिक)
१६ विश्वास राजस्थान (साप्ताहिक)
१७ शोध पत्रिका (त्रैमासिक)
१८ सरस्वती (मासिक)
१९ संघ शक्ति (मासिक)
२० साधना
२१ साहित्य संदेश (मासिक)

(घ) लेख

१ रामदयाल कविया और रामदयाल वश कराज—भामान्नसिंह शेखावत

२ राजस्थानी गद्य — डा० प्रेमनारायण टंडन

३ राजस्थानी-नाट्य-परम्परा — गोवर्द्धन शर्मा

४ राजस्थानी भाषा के १० नाटक और

१ उपन्यास — अगरचन्द नाहटा

५ श्री अगरचन्द नाहटा डा० कन्हैयालाल सहल नरोत्तमदास स्वामी रावत सारस्वत और मनोहर शर्मा के कई लेख।

